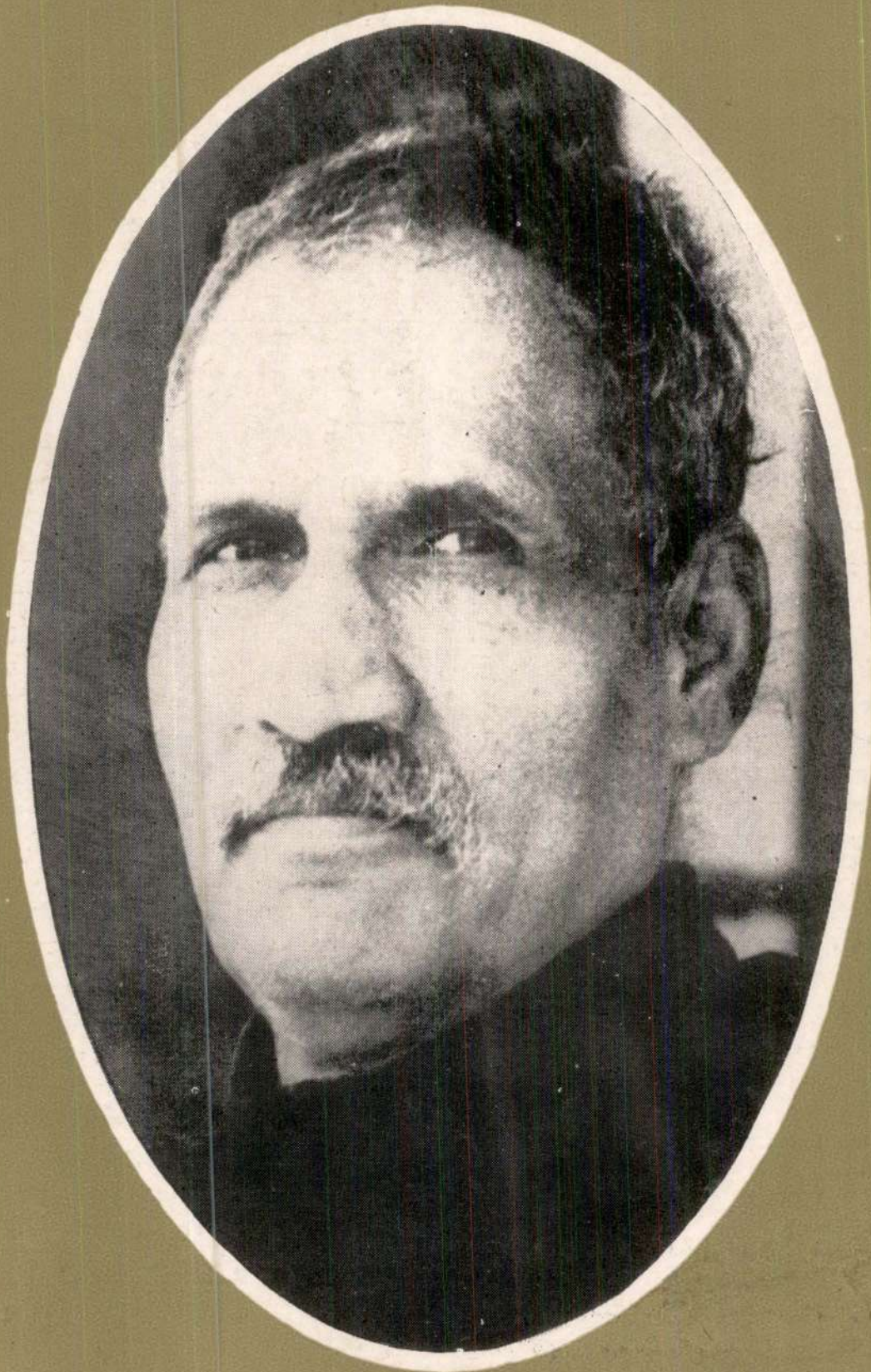


जुलाई, 1985

मूल्य : डेढ़ रुपया

आजकल





ज्ञानपीठ का दो दिवसीय समारोह

□ शेरजंग गर्ग

नयी दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ के तत्वावधान में गत 11 और 12 मई को राजधानी के फिक्की सभागार में दो दिवसीय साहित्य समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर केंद्रीय सूचना और प्रसारण राज्यमंत्री श्री बी. न. गाडगिल ने कन्नड़ लेखक श्री सी. के. नागराज राव को उनकी कृति 'पट्टमहादेवी शान्तला' के लिए ग्यारह हजार रुपये के मूर्तिदेवी पुरस्कार से सम्मानित किया।

इस अवसर पर श्री गाडगिल ने कहा कि यह पुरस्कार देश की भावनात्मक और सांस्कृतिक एकता बढ़ाने में भारी योगदान देगा तथा इससे अन्य लेखकों को भी अहिंसा और समानता के विचारों पर आधारित साहित्यिक कृतियां रचने की प्रेरणा मिलेगी। उन्होंने कहा "भारतीय ज्ञानपीठ ने क्षेत्रीय भाषाओं को करीब लाने में सराहनीय कार्य किए हैं। श्री राव को पुरस्कृत होने पर उन्होंने हार्दिक बधाई दी।

इससे पूर्व श्री अशोक जैन ने सभी साहित्यकारों को माल्यार्पण किया। पुरस्कार का परिचय देते हुए साहू श्रेयांस प्रसाद जैन ने कहा कि संस्कृति के मूलभूत मूल्यों को प्रतिपादित करने वाली कृतियों को पुरस्कृत करने की दिशा में हमारा यह पहला आयोजन है। 'पट्टमहादेवी शान्तला' में श्रद्धा के महत्व को प्रतिपादित किया गया है। कु. ऋचा जैन ने श्री सी. के. नागराज राव को भेंट किए जाने वाले प्रशस्तिपत्र का वाचन किया।

पहले दिन 'क्षेत्रीय साहित्य राष्ट्रीय संदर्भ' विषय पर परिसंवाद हुआ, जिसमें भाग लेने वाले लेखकों में प्रमुख थे श्री बीरेन्द्र भट्टाचार्य (असमी), डॉ. हरिकृष्ण कौल (कश्मीरी), डॉ. रघुवीर चौधरी (गुजराती), प्रभजोत कौर (पंजाबी), सुव्रत सेन गुप्त

(बंगला), डॉ. मोतीलाल जांतवाणी (सिंधी), भीष्म साहनी एवं मृदुला गर्ग (हिन्दी) आदि।

साहित्य के राष्ट्रीय संदर्भों को उजागर करते हुए श्री भीष्म साहनी ने कहा कि साहित्य का स्वाभाविक गुण है सार्थकता, भले ही वह किसी भी क्षेत्र की उपज हो। हिन्दी को किसी सीमित अथवा नपे-तुले क्षेत्र का साहित्य नहीं माना जा सकता। हिन्दी का समूचा श्रेष्ठ साहित्य राष्ट्रीय संदर्भों से भरा पूरा है।"

गुजराती साहित्यकार डॉ. रघुवीर चौधरी ने साहित्य के महान एवं व्यापक संदर्भों का उल्लेख करते हुए कहा कि महात्मा गांधी की आत्मकथा एवं गीता जैसी कृतियां किसी क्षेत्रीयता के चौखटे में फिट की जाने वाली चीज नहीं हैं, इनका संदर्भ राष्ट्रीय है और पूर्णतः भारतीय है। परिसंवाद का संचालन ज्ञानपीठ के निदेशक श्री विशन टण्डन ने किया।

परिसंवाद के पश्चात् श्री सी. के. नागराज राव की कृति 'पट्टमहादेवी शान्तला' तथा श्री सुव्रत सेन गुप्त की रचना 'महापुरुष की हत्या' एवं भीष्म साहनी की कहानी 'संभल के वावू' का सफल मंचन 'संभव' के कलाकारों द्वारा श्री देवेन्द्रराज अंकुर के निर्देशन एवं प्रस्तुति परिकल्पना के अन्तर्गत हुआ। इस कार्यक्रम का संचालन ज्ञानपीठ के सचिव श्री बाल स्वरूप राही ने किया।

इस अवसर पर श्री नीरज जैन द्वारा संपादित 'गोमटेश्वर सहस्राब्दी महोत्सव दर्शन' पुस्तक का विमोचन डॉ. दौलत सिंह कोठारी ने किया।



आजकल

आधुनिक साहित्य
एवं
संस्कृति का संवाहक मासिक

संपादक
नरेन्द्र सिन्हा

सहायक संपादक
प्रवीण उपाध्याय

उप-संपादक
राधेश्याम भारद्वाज

व्यापार व्यवस्थापक : लेखराज बत्रा
सहायक व्यापार व्यवस्थापक : एडवर्ड बेक
सहायक निदेशक (प्रकाशन) : आर. एस. मुंजाल
आवरण सज्जा : अलका नय्यर

वर्ष : 42; अंक : 3; पूर्णांक : 491; जुलाई : 1985
(आपाढ़-श्रावण : 1907)

3. सम्पादकीय : पं. बनारसीदास चतुर्वेदी

लेख

4. हिन्दी का एक और स्तम्भ ढह गया बांके बिहारी भट्टनागर
7. साहित्यानुभूति के क्षेत्र में फ्रायड का मूल्यांकन
रतनलाल जोशी
10. समकालीन मलयालम कविता एम. षण्मुखन
13. हिन्दी की कुछ पत्रिकाएं कमल किशोर गोयनका
25. टी. एस. इलियट की कविता में
भारतीय तत्व डा. स्वर्ण प्रभात
29. नीदरलैंड में हिन्दी शिक्षण डा. उमादत्त शर्मा 'सतीश'
34. जनवाणी तथा मंत्री वाणी का संगम शंकर भट्ट

कहानियां

16. नौवें दशक की दोस्ती चन्द्रकान्ता
31. माधो चाचा श्याम बिहारी सिंह श्यामल
37. अपना-अपना सुख शीतांशु भारद्वाज

22. कविताएं

ऋता शुक्ल, भारत यायावर, सरस्वती आराधना,
रमेशचंद्र पंत, रतिलाल शाहीन, राजेन्द्र गौतम

इसके अतिरिक्त पुस्तक समीक्षा, वातायन, रंगमंच आदि अन्य
नियमित स्तम्भ ।



‘आजकल’ का अप्रैल अंक मिला। अंक देखते ही अंतर में प्रसन्नता की लहर दौड़ गयी। राष्ट्रीय संकट की ऐसी विपन्न घड़ी में आपने पंजाब विशेषांक निकालकर बड़ी दूरदर्शिता के साथ राष्ट्रहित साधन का महान कार्य सम्पादित किया है। आपने राष्ट्र को पंजाब के विविध समृद्ध अवदानों के विभिन्न पक्षों-पहलुओं को प्रकाश में लाकर गुरु गंभीर संपादकीय दायित्व का गरिमामय निर्वहन किया है। आशा है अन्य पत्र-पत्रिकाएं भी आपके नेतृत्व से प्रभावित हो पंजाब विशेषांक प्रकाशित करेंगीं। पंजाब के सपूतों द्वारा लिखित इतनी सारी कथा-काव्य एवं पंजाब सम्बन्धी सामग्री पढ़कर मेरा राष्ट्रप्रेमी मन आश्चर्य हो गया कि हिंसा-विद्वेष, घृणा एवं निराशा के घने अंधकार से घिरे वातावरण में भी राष्ट्र-प्रेम के विवेक-दीप बुझे नहीं हैं बल्कि और अधिक स्नेहासिक्त हो आलोक-दान करते जा रहे हैं। इस संदर्भ में आजाद गुलाटी का लेख ‘पंजाब का उर्दू साहित्य को अवदान’ डॉ. नरेश का ‘पंजाब में रचित भक्ति साहित्य’ और लोचन बक्शी का लेख ‘आदिग्रन्थ-दिव्य प्रेम का काव्य’ बहुत ही वजनी, दमदार और रुचिकर लगे। प्रभजोत कौर की ‘अनुभूति’, मीशा की ‘लकीर’, ज्योतिदेव की ‘हृसद की प्यास’, डॉ. रवीन्द्र की ‘वापिसी’, कृष्णकुमार की ‘बुद्धिजीवी’ कविताएं विशेष पसन्द आईं, मर्म को छू गईं। एक ओर अमृता प्रीतम की कहानी—‘एक कहानी का तखलीकी अमल’ ने कुछ अजीब प्रतीकात्मकता के कुहरामय मोहक छवि-जाल में उलझाए रखा तो दूसरी ओर पृथ्वीराज मोंगा की कहानी ‘थके हारे’ अपने समग्र कड़वे यथार्थ में वार्धक्य के विवश कारण को रेखांकित कर गई, उजागर कर गई, दिल को छू गई।

रवीन्द्रनाथ ओझा, बेतिया, बिहार

‘पंजाब विशेषांक’ हस्तगत हुआ। भारत के मानचित्र में पंजाब का स्थान मात्र टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं में ही चित्रित नहीं है। अपितु साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को अपने अंक में समेटे अपनी गौरवशाली परम्परा का इतिहास बार-बार दुहराता है। पंजाब की अद्यतन उपलब्धियों को देखते हुए ऐसा लगता है कि—“इस घर को आग लग गयी, घर के चिराग से”। आज भी साहित्यिक सांस्कृतिक रचना-धर्मिता के धरातल पर पंजाब हृदय-शून्य सा नहीं लगता। साहित्य देवता

के चरणों पर पंजाब अहर्निश अमूल्य-रचना-पुष्प अर्पित करता जा रहा है। ‘पंजाब की कलम से लिखी : समकालीन हिन्दी कविता’ इस बात की पुष्टि करती है और हिन्दी-काव्य-विकास के चरणों में गति प्रदान करती है। अमृता प्रीतम की कहानी ‘एक कहानी का तखलीकी अमल’ कहानी-शिल्प की दृष्टि से एक नवीन दिशा देती है। ‘दूसरी औरत होने का सुख’ नारी मनो-भावों के मसृण एवं संवेदनशील भावों को अभिव्यक्त करती है। डॉ. बाली को हमारी बधाई। सम्पादकीय पढ़कर यह बात अक्षरशः सच लगी कि—‘अमृत बांटा रहा है पंजाब’। मैं हृदय से आपको साधुवाद देता हूँ साथ ही मेरे अन्तरतम के सुप्त तारों को भ्रूंकृत कर गयी ‘अनुभूति’। अतः प्रभजोत कौर जी को भी हमारा शतशः अभिनन्दन। उनकी कविता की अनुभूति व्यक्ति के शाश्वत चिंतन का सत्य है। आशा है ‘आजकल’ युग के बदलते मूल्यों के साथ सर्वोच्च पर समादृत होगा।

योगेश कुमार पाण्डेय, वाराणसी

पंजाब विशेषांक पूरा पढ़ा। सचमुच यह विशेषांक अपने आप में अनुपम रहा। आपने बड़ी मेहनत की है इसमें। इसी अंक में श्री इंद्रजीत लालजी का लेख ‘राजेन्द्र सिंह बेदी—कुछ संस्मरण’ तथा डॉ. मनमोहन सहगल का लेख ‘स्वतंत्रता आंदोलन : पंजाब का अवदान’ हृदयस्पर्शी रहे। इसके अलावा इन्दु बाली जी की कहानी ‘दूसरी औरत होने का सुख’ दिल को छू गयी। आंखें भर आयीं कहानी पढ़कर। कविताओं में केवल श्री फूलचंद मानव, केदारनाथ कोमल तथा प्रभजोत कौर की ही रचनायें स्तरीय और हृदयस्पर्शी लगीं। बधाई स्वीकार करें। आपका ‘सम्पादकीय’ तो हर बार बेमिसाल रहता ही है। इसके लिए भी बधाई स्वीकार करें।

—संजय ‘सरल’ इलाहाबाद

पंजाब समस्या के राजनीतिक हल की खोज के साथ-साथ और उससे भी महत्वपूर्ण है हिन्दू-सिक्खों के बीच आपसी सद्भावना को बनाये रखने का सतत प्रयास करते रहना। पंजाब विशेषांक के माध्यम से ‘आजकल’ ने इसी सद्भावना को बढ़ावा देने का जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। सम्पादकीय में पंजाब द्वारा अमृत बांटने की जो बात कही गयी है, वह राष्ट्रभक्त सिक्खों को गर्व और स्वाभिमान की अनुभूति देने वाली है। कविताओं में स. स. मीशा की ‘लकीर’ सबसे अच्छी कही जा सकती है। लोचन सिंह बक्शी द्वारा आदि ग्रन्थ का परिचय प्रासंगिक एवं प्रेरणास्पद है। डॉ. इन्दुबाली की कहानी ‘दूसरी औरत होने का सुख’ में कथानक तो मिला लेकिन साहित्यिक-संवेदना की अनुभूति नहीं मिली। जबकि इसके विपरीत पृथ्वीराज मोंगा की कहानी ‘थके हारे’ अन्तर्मन को झकझोर कर रख देती है।

कमलेश भट्ट ‘कमल’, बरेली



यशस्वी साहित्यकार और प्रखर पत्रकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी हमारे बीच नहीं रहे। अपनी तिरानवे वर्ष की लम्बी उम्र में, उन्होंने लगभग 75 वर्षों तक विविध क्षेत्रों में हिन्दी की जो श्रीवृद्धि की है, उसे आगे आने वाली पीढ़ियाँ सदा कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करेंगी।

प्रातःस्मरणीय चतुर्वेदीजी की प्रतिमा तो बहुमुखी थी ही, उनका व्यक्तित्व भी बहु-आयामी था। वह अलग-अलग रूपों में हिन्दी संसार के सामने आए—जीवनी-लेखक के रूप में, शहीदों के श्राद्धकर्ता के रूप में, स्वस्थ, जीवनोन्मुखी साहित्य के लिए आंदोलनकर्ता के रूप में, अपने सिद्धांतों में प्रबल आस्था रखने वाले एक स्वतंत्रचेता पत्रकार के रूप में, और सबसे बढ़कर प्रवासी भारतीयों के उद्धारक के रूप में। इन सभी क्षेत्रों में उनकी सेवाएं अप्रतिम रहीं, योगदान अद्वितीय रहा।

अपने सुदीर्घ सेवा-काल में उन्होंने कितने ही देशी-विदेशी क्रांतिकारियों और साहित्यकारों की जीवनियाँ और संस्मरण लिखे, बहुतेरे दिवंगत क्रांतिकारियों की स्मृति-रक्षा और उनके बेसहारा परिवारों की सहायता में जी-जान से लगे। 'घासलेटी' साहित्य के विरुद्ध और 'कर्म देवाय' साहित्य के लिए आंदोलनकर्ता के रूप में उनकी सेवाएँ चिरस्मरणीय रहेंगी। उन्होंने टालस्टाय और प्रिंस क्रोपाटकिन जैसे अराजकतावादी क्रांतिकारियों से प्रेरणा ग्रहण की थी। उनके जीवन और योगदान से हिन्दी-संसार को सर्वप्रथम परिचय कराने का श्रेय चतुर्वेदीजी को ही प्राप्त है।

एक अराजकतावादी होने के नाते, चतुर्वेदीजी विचारों की स्वाधीनता के पक्षधर थे और अपने सिद्धांतों में उनकी प्रबल आस्था थी। उनकी धारणा थी कि कोई भी और कौसी भी शासन-व्यवस्था क्यों न हो, उसमें विचारों की स्वाधीनता संभव नहीं है। यह उनका सौभाग्य ही माना जाना चाहिए कि सन् 1928 से सन् 1937 की दस वर्षों की लम्बी अवधि में, जब उन्होंने 'विशाल भारत' का सम्पादन किया, उन्हें स्व. श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय जैसी विभूति के अधीन काम करने का अवसर मिला, जिसने 'विशाल भारत' का प्रोपराइटर होते हुए भी, एक पत्रकार के रूप में उनकी स्वाधीनता में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। यह इसलिए संभव हो सका कि रामानन्द बाबू स्वयं एक स्वतंत्रचेता पत्रकार थे। लेकिन इससे चतुर्वेदीजी की महत्ता में कोई कमी नहीं आती। विचारों की स्वाधीनता उन्हें कितनी प्रिय थी, इसका इसी से पता चलता है कि रामानन्द बाबू के हिन्दू महासभा का प्रधान बन जाने पर वह 'विशाल भारत' में उनके विरोध में लिखने से बाज नहीं आए। इस

घटना का जिक्र चतुर्वेदीजी के आत्मचरित— 'महापुरुषों की खोज में'—में आया है। वस्तुतः चतुर्वेदीजी स्वयं एक महापुरुष थे और आजीवन महापुरुषों की खोज में लगे रहे। वह अपने समय में देश के अनेक महापुरुषों के सम्पर्क में आए थे और उनके साथ काम करने का सुयोग इन्हें प्राप्त हुआ था। उनकी विशेषताओं को प्रकाश में लाना चतुर्वेदीजी के जीवन का एक लक्ष्य था।

चतुर्वेदीजी का पत्रकार आन्दोलन से भी सम्बन्ध था और सन् 1945 में उन्होंने मथुरा के अखिल भारतीय हिन्दी पत्रकार सम्मेलन की अध्यक्षता भी की थी। इस क्षेत्र में भी उनकी सेवाएँ उल्लेखनीय रही हैं। वैचारिक स्वाधीनता को वह कितना महत्व देते थे, यह उनके जीवन की एक अन्य घटना से भी प्रकट होता है। मथुरा सम्मेलन की अध्यक्षता के शीघ्र बाद, जब उन्हें एक पत्र-संचालक से उसकी प्रस्तावित पत्रिका का सम्पादक बनने का आमंत्रण मिला, उन्होंने उस संचालक के नाम एक पत्र में लिखा था—'मेरे द्वारा सम्पादित पत्रिका का अराजकतावादी होना अनिवार्य है। अपने विचारों को दबाना मेरे लिए बहुत ही मुश्किल है। मैं न खुद धोखा खाना चाहता हूँ और न आपको धोखे में रखना चाहता हूँ।.....पूँजीपतियों के इस क्षेत्र में प्रवेश से मैं आशंकित हूँ। यदि पत्र मेरे हाथ में आया तो उसका प्रथम लेख होगा 'पत्रकार क्षेत्र में पूँजीपतियों का प्रवेश'।.....क्या आप और आपके साथी मुझे उतनी स्वतंत्रता दे सकते हैं कि पूँजीपतियों के पत्रकार-क्षेत्र में प्रवेश के विरुद्ध इस पत्र में आन्दोलन उठाऊँ और उसे जोर-शोर के साथ चलाऊँ? यदि आपका पत्र पूँजीवाद के विरोध और साम्यवाद के प्रचार को सहन कर सके तो फिर क्या कहना है, मैं हाजिर हूँ।'

चतुर्वेदीजी के योगदान की चर्चा अधूरी रहेगी, यदि उनके पत्र-लेखक के रूप की चर्चा न की जाए। पत्र-लेखन उनका व्यसन था। अपने सुदीर्घ जीवन में उन्होंने एक लाख से भी अधिक पत्र लिखे। ये पत्र विशिष्ट जनों के साथ-साथ सामान्य जनों को भी लिखे गए। यदि उन पत्रों के संकलन प्रकाशित किए जाएं तो उनमें उस युग का इतिहास बोलता मिलेगा।

आज जब जीवन के सभी क्षेत्रों में बौनों का प्रभुत्व बढ़ रहा है, साहित्य और पत्रकारिता व्यावसायिकता के शिकंजे में पूरी तरह कस गई है, उनकी स्मृति ज्योति स्तम्भ बन कर हमारा पथ आलोकित कर सकती है।

आधार : चतुर्वेदीजी का आत्मचरित 'महापुरुषों की खोज'।

हिन्दी का एक और स्तम्भ ढह गया

□ बांके बिहारी भटनागर

तो, बनारसी दासजी भी गये। एक-एक करके हिन्दी के सभी बड़े फूल भरते जा रहे हैं। कह सकते हैं कि इसमें अप्राकृतिक क्या है? फलना, फूलना और भरना तो प्रकृति की लीला है। समय आने पर सभी कुम्हलाते और भरते हैं। साथ-ही-साथ, यह भी तो प्रकृति की ही लीला है कि जहां एक ओर बड़े फूल भरते हैं वहां दूसरी ओर छोटे फूल धीरे-धीरे बढ़कर वाटिका को फिर सुहावना बनाते हैं। माना; किंतु यह भी मानना पड़ेगा कि बड़े फूलों के न रहने पर कुछ समय के लिए तो सूनापन और रिक्तता का बोध होता ही है। भरे हुए फूलों की सुगन्ध और मोहकता लम्बे समय तक मन-मस्तिष्क पर छायी रहती है। फिर सब कुछ काल की ही असल गहराई में विलीन हो जाता है। केवल जन्म और मृत्यु की तिथियों पर सुधियां फिर जागती हैं; भावना के आवेश में कुछ समारोह किये जाते हैं, विरुदावली गायी जाती है और फिर ये स्मृतियां भी जीवन के बीहड़ अरण्य में खो जाती हैं।

आज बनारसीदासजी चतुर्वेदी की आकृति आंखों के सामने नाच रही है। मन को विश्वास नहीं होता, यह सोचने तक का साहस नहीं होता कि यह आकृति अब देखने को नहीं मिलेगी। किन्तु इससे पहले औरों की आकृतियां भी आंखों के सामने नाची हैं और धीरे-धीरे अदृश्य हो गई हैं। परिचितों और मित्रों की बातें तो दूर, अपने को जन्म देने वाले माता-पिता तक के चेहरे धुंधला जाते हैं। मैं जानता हूं, बनारसीदासजी के साथ भी ऐसा ही होगा, लोग रोयेंगे, सिर धुनेंगे, छाती पीटेंगे, फिर थक कर शान्त हो जायेंगे। धाव का निशान तक गिर जायेगा। थोड़े ही दिनों में ऐसा हो जायेगा जैसे कुछ हुआ ही न हो। यही विधाता की व्यवस्था है, यही उसकी अपार महिमा है।

असीम व्यथा की घड़ी तब आती है जब मन भीतर से रोता होता है और ठीक उसी समय कोई पत्र-सम्पादक दिवंगत प्राणी पर कुछ लिखने के लिए आग्रह कर बैठता है और व्यथा की भारी लेखनी को बरबस झकझोर कर उठाना पड़ता है। क्या करे बेचारी लेखनी ऐसे अवसर पर? वह तो मन की भावनाओं की अनुगामिनी होती है। मेरी लेखनी मेरा कितना

साथ दे पायेगी, मैं नहीं जानता। मैं उन लिक्खाड़ों में से तो हूं नहीं जो-सुख हो चाहे दुख पन्ने के पन्ने रंग डालते हैं। मैं दो-चार पन्ने लिख सकूं, उतने में ही अपने को धन्य समझूंगा।

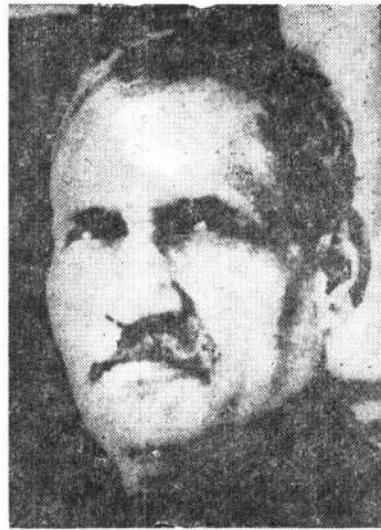
क्या लिखूं बनारसीदासजी के लिए? वह मेरे गुरु-समान थे और सारे हिन्दी संसार के लिए देवता-स्वरूप। ऐसा हंसता-विहंसता व्यवित्तव, सीधा-सच्चा, सरल स्वभाव का महापुरुष मैंने अपने जीवन में-कुछ वर्ष के लम्बे जीवन में-बहुत कम देखा है। न ईर्ष्या, न द्वेष, न छल, न कपट;

क्षण-क्षण पर गहन आत्मीयता का बोध कराने वाले बनारसीदास हम सबको छोड़ गये। सही-सही स्मरण तो नहीं आ रहा है किन्तु शायद मेरा उनका प्रथम परिचय तब हुआ जब वह विशाल भारत के सम्पादक थे और लेखक बनने की धुन में मैंने मोपासा की कहानी 'नेकलेस' का अनुवाद उनके पास प्रकाश-

नार्थ भेजा था। उन्होंने बड़ी तत्परता के साथ मेरी रचना स्वीकार की थी और स्वयं पत्र लिखकर मुझे आशीर्वाद दिया था। उन्हें मेरी भाषा की शैली अच्छी लगी थी और मेरी प्रतिमा पर विश्वास होने के कारण वह बार-बार मुझे कुछ न कुछ लिखते रहने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। तभी से मैं उन्हें अपना गुरु मानने लगा था।

बनारसीदासजी 'विशाल भारत' के सम्पादक सन् 1928 में बने थे, जब मैं केवल 18 वर्ष का था। सन् 1937 में जब उन्होंने 'विशाल भारत' छोड़ा तब मैं पंडित रूप-नारायणजी पाण्डेय के साथ सुप्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'माधुरी' का सह-

सम्पादक था। यह मैं इसलिए लिख रहा हूं कि एक सम्पादक के रूप में बनारसीदासजी ने मेरी लेखकीय प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करके अपने प्रति जितना श्रद्धावान बना दिया था उसमें उस समय भी जब मैं स्वयं सम्पादक बन गया था किसी प्रकार की कमी नहीं आई थी। मुझे याद तो नहीं कि 'माधुरी' में बनारसीदासजी की किसी रचना को प्रकाशित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था या नहीं, किन्तु जब मैं दिल्ली में साप्ताहिक हिन्दुस्तान का सम्पादक बना तब बनारसीदासजी ने अपनी कोई रचना प्रकाशनार्थ भेजी और उसके साथ उन्होंने अपने अंग्रेजी मिश्रित हिन्दी पत्र में जिस नम्रता के साथ मुझे सम्बोधित किया उसने मुझे पानी-पानी कर दिया और



उस दिन के बाद से मेरा और बनारसीदासजी का स्नेह-भाव दृढ़ होता गया। 'विशाल भारत' के सम्पादक-पद पर रहते हुए उन्होंने घासलेटी साहित्य के विरुद्ध जो धर्म-गुद्ध छेड़ा था उसने उन्हें मेरी दृष्टि में और भी आदरणीय बना दिया था और साप्ताहिक हिन्दुस्तान में भी मैंने उनसे कई बार इस विषय पर लिखवाया था तथा अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में उनका जोरदार समर्थन किया था। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' से वह बहुत प्रसन्न थे और जब तक मैं उस पत्र में रहा मुझे निरन्तर उनका कृपापूर्ण सहयोग मिलता रहा। हिन्दी की सेवा का भाव शायद एक ऐसा भाव था, जिसकी आग दोनों के हृदयों में धधकती थी और यह कहना अनुचित न होगा कि हमारे पारस्परिक सद्भाव को प्रज्ज्वलित रखने में इस ज्वाला का सबसे बड़ा योगदान था।

सन् 1953 में जब बनारसीदासजी राज्य-सभा के सदस्य बनकर दिल्ली आये तब स्वभावतः हमारा सौमनस्य बढ़ा। सन् 1953 में उन्होंने हिन्दी-भवन की स्थापना की और उसके लिए भारत सरकार से आर्थिक अनुदान के अतिरिक्त कनाट प्लेस स्थित थियेटर कम्प्यूनिकेशन बिल्डिंग में दो कमरे भी प्राप्त किये। देखते ही देखते हिन्दी-भवन दिल्ली के हिन्दी-प्रेमियों का मिलन-केन्द्र बन गया और वहाँ नित्य नव विचार-गोष्ठियाँ तथा सभाएँ होने लगीं। विदेशों से राजधानी आने वाले हिन्दी-प्रेमी भी समय-समय पर हिन्दी-भवन में पधारने लगे और उनके स्वागत-सत्कार तथा सम्मान के विशेष कार्यक्रम आयोजित होने लगे। भारत सरकार से धन प्राप्त करके बनारसीदासजी ने हिन्दी-भवन में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की जिसमें हिन्दी की दुर्लभ पुस्तकों के साथ ही साथ उन्होंने अंग्रेजी की भी कुछ चुनी हुई पुस्तकों को ससम्मान स्थान दिया। कुछ ही दिनों में राजधानी में हिन्दी-भवन की धूम मच गई और वह हिन्दी प्रेमियों के लिए एक मन्दिर बन गया।

मुझ पर बनारसीदासजी का विशेष स्नेह था। उन्होंने हिन्दी-भवन के कई उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य मुझे सौंपे और मैंने उन उत्तरदायित्वों को सहर्ष तथा सगर्व सम्पन्न करने का प्रयत्न किया। वैसे तो श्रीमती सत्यवती मलिक और श्री यशपाल जैन उनके निकटस्थ विश्वास पात्र थे, फिर भी संसद-सदस्यता की 12 वर्षीय अवधि समाप्त होने पर जब बनारसीदासजी दिल्ली से विदा लेने लगे तब न जाने क्या सोचकर उन्होंने हिन्दी-भवन का भार मेरे कंधों पर डाला और हिन्दी-भवन के सदस्यों की सभा करके मुझे हिन्दी-भवन का मंत्री नियुक्त कराया। तब से आज तक मैं इस पद को अपने निबल कंधों पर सम्भाले हुए हूँ, यद्यपि थियेटर कम्प्यूनिकेशन के टूट जाने के कारण (आजकल वहाँ पालिका बाजार है) हिन्दी भवन की व्यवस्था बड़ी अस्तव्यस्त हो गई है और उसके नियमित कार्यक्रमों के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं रह गया है। फिर भी भारत सरकार की सहायता से हिन्दी-भवन के विशाल पुस्त-



बनारसीदासजी अपने अध्ययन कक्ष में

कालय को केन्द्रीय हिन्दी पुस्तकालय (मंडी हाउस) में उचित स्थान प्राप्त हो गया है और उसका कार्यालय इस समय ए-49 गुलमोहर पार्क में स्थित है।

बनारसीदासजी को मेरे स्वास्थ्य की बड़ी चिन्ता रहती थी, जिसके मूल में मेरे प्रति उनका अगाध स्नेह और अनुराग ही था। जब मुझे दिल का दौरा पड़ा था और मैं लम्बे समय तक हिन्दी-भवन की देखभाल नहीं कर पाया था, तब उनके पत्र मेरे पास निरन्तर आते रहते थे और वह मुझसे पूरी तरह से विश्राम करने का आग्रह करते रहते थे। एक बार उन्होंने लिखा था—“आप खूब तनदुरुस्त रहें, चाहे हिन्दी-भवन और साप्ताहिक हिन्दुस्तान जहन्नुम में चले जायें। आपकी योग्यता इतनी उच्च है और अनुभव इतना विशाल की आपको आजी-विका के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। इसलिए छुट्टी और भी बढ़ा कर निश्चिन्ताई के साथ विश्राम कीजिए।”

जो हिन्दी भवन उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा था उसकी भी किसी प्रकार की चिन्ता न करने का आग्रह वह मुझसे निरन्तर करते रहते थे। यह उनके हृदय की विशालता नहीं तो और क्या थी ?

हिन्दी-भवन के प्रति मेरा प्यार इसलिए नहीं कि मैं हिन्दी का एक विनम्र सेवक हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं उसे बनारसी-दासजी की एक पवित्र धरोहर मानता हूँ और अब जबकि मेरे अग्रज इस संसार से मुंह मोड़ गये हैं, हिन्दी-भवन के प्रति मेरी निष्ठा और कर्तव्यपरायणता हजारगुनी अधिक बढ़ गई है और यदि मैं उनका कुशलतापूर्वक पालन कर सका तो अपने को कृतकृत्य मानूंगा।

मैं संकलनकर्ता या इतिहासकार नहीं हूँ, इसलिए बनारसी-दासजी का जीवन-वृत्त लिखना मेरे लिए संभव नहीं। वह तो हिन्दी के अनेक लेखक कर लेंगे। मेरा तो बनारसीदासजी के साथ मानवीयता और संबेदनशीलता का संबंध था और वह

संबंध उनके न रहने पर भी मैं तब तक संजोए रखूंगा जब तक मेरे प्रभु मुझे भी अपने पास न बुला लें। बनारसीदासजी जैसे संवेदनशील मानव को स्रष्टा की एक अनुपम कृति की ही संज्ञा दी जा सकती है। मैंने उन्हें कभी क्रुद्ध होते नहीं देखा, मैंने उन्हें खादी के सीधे-साधे वस्त्रों के अतिरिक्त और किसी भड़कीली पोशाक से सज्जित नहीं पाया। सरल, अलमस्त ढंग से खिलखिलाते हुए जीवन बिताना उनकी विशेषता थी। जिन लोगों ने उन्हें मुक्त भाव से ठठा कर हंसते देखा है वे उनकी उस समय की आकृति को कदापि नहीं भूल सकते। ऐसा ही एक अद्भुत जादू था उनके हंसने में।

दुखियों के दुख से दुखी होना और उनके कष्ट को यथा-शक्ति दूर करने में योग देना बनारसीदासजी का एक व्यसन था। इसीलिए गुरु होने के साथ-ही-साथ वह मुझे देवता-तुल्य लगते थे। आज भी लगते हैं और सदा लगते रहेंगे। मृत्यु शरीर का नाश कर सकती है, सुकीर्ति का नहीं।

मेरे पास बनारसीदासजी के अनेक पत्र हैं। सब इधर-उधर पड़े हुये हैं, कभी उन्हें संजोने का प्रयत्न करूंगा, किन्तु उनका एक पत्र अकस्मात् मुझे मिल गया है, जिसे मैं पाठकों के सम्मुख रखने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूं। इसमें उनके हृदय की विशालता के साथ-ही-साथ एक अद्भुत भविष्यवाणी के भी दर्शन होंगे।

North Avenue, New Delhi,
26-12-63

प्रिय भटनागरजी,

यद्यपि मैंने इस बात का विरोध किया था कि इतने एलो-बोरेट ढंग पर मेरा 'सम्मान' किया जाय, पर उस दिन के उल्लासमय वातावरण को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि आपकी बात ठीक थी और मेरी गलत। इसका अभिप्राय यह नहीं कि मैं उन सब प्रशंसात्मक विरुदावलियों का वास्तविक अधिकारी था, जिनका बखान उस मीटिंग में किया गया। अपनी त्रुटियों-कमजोरियों और अनाचारों को मैं भली-भांति जानता हूं और जिन गुणों का आरोप मुझ पर किया गया है उनको मैं REPUDIATE करता हूं। ELABORATE और REPUDIATE का अर्थ आप डिक्शनरी में देख लीजिये।

It was a splendid geathering—not because of my humble name being associated with it—but because of the extreme care that had been bestowed upon it by you and your associaites—वीरेंद्र जी, किशनलालजी and others. Honestly, I must tell you that I don't deserve even one tenth of the praise so lovishly bestowed upon me. जो विज्ञापन आपने मुझे दिया है उससे लाभ उठाने के लिए मैं 'चीबेजी की चाय' की दूकान खोल देना चाहता हूं—इसी शीर्षक से एक लेखमाला ही 'विशाल भारत' में छपती थी, जो काफ़ी लोकप्रिय हो गई थी।

कृपया अपने सभी साथियों को मेरी ओर से धन्यवाद दे

दीजिए। दिल्ली वाले सन् 1951 से ही मेरा जन्म-दिवस मना रहे हैं। मेरे पूज्य पिताजी 93 वर्ष तक जीवित रहे थे और 'खुदा न ख्वास्ता' यदि मैं दीर्घजीवी हुआ तो दिल्ली वालों को अभी 20-22 वर्ष तक यह 'अव्यापार' करना पड़ेगा।

मुझे उम्मीद नहीं थी कि उस दिन इतने व्यक्ति इकट्ठे हो जायेंगे, पर अन्य लोगों के परिश्रम का वह परिणाम हुआ। मैं कोई महात्मा नहीं। महामानव भी नहीं। इसलिए यह दावा नहीं कर सकता कि मुझे अपनी कद्रदानी से नफरत है, फिर भी एक रेखाचित्रकार की हैसियत से इतना अवश्य कहूंगा कि उस दिन के चित्रांकन में प्रकाश का भाग बहुत ज्यादा था, छाया का बहुत कम। Light and Shadow का अनुपात जब ठीक हो तभी सफल चित्र बनता है। हां भाई श्री नारायणजी चतुर्वेदी ने अपने चौबेपन से जो रंगत ला दी वह मार्क की चीज थी।

आपका ऋणी और कृतज्ञ,

बनारसीदास चतुर्वेदी

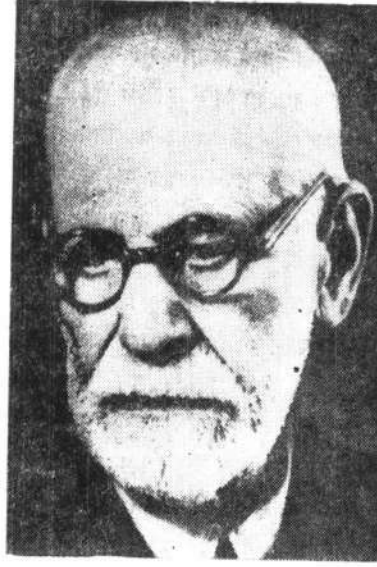
बनारसीदासजी के कथनानुसार उनके पिताजी 93 वर्ष तक जीवित रहे। सन् 1963 में लिखे उपर्युक्त पत्र में बनारसीदासजी ने आशंका व्यक्त की थी कि यदि 'खुदा न ख्वास्ता' वह दीर्घ-जीवी हुए तो दिल्ली वालों को अभी 20-22 वर्ष तक यह 'अव्यापार' करना पड़ेगा। $63 + 22 = 85$ । कितनी सच्ची थी बनारसीदासजी की भविष्यवाणी। सन् 1985 में पिताजी की ही तरह वह भी 93 वर्ष की आयु में स्वर्गवासी हुए हैं।

दिवंगत आत्मा को शत-शत प्रणाम □

ए-49 गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-110049

आजकल का चन्दा

- ★ एक प्रति 1 रुपया 50 पैसे ; वार्षिक 15 रुपये ; द्विवाषिक 27 रुपये तथा त्रिवाषिक 38 रुपये मात्र।
- ★ छात्रों, अध्यापकों और पुस्तकालयों के लिए चन्दे में 10 प्रतिशत की छूट। इसके लिये प्रमाणपत्र भेजना आवश्यक है।
- ★ आजकल के नियमित ग्राहकों को प्रकाशन-विभाग की 5 रुपये या अधिक मूल्य की पुस्तकें खरीदने पर 10 प्रतिशत छूट दी जाती है।
- ★ चन्दे एवं विज्ञापन तथा पत्रिका न मिलने की शिकायत भेजने का पता—व्यापार व्यवस्थापक, पटियाला हाउस, नई दिल्ली। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
- ★ संपादकीय पत्रव्यवहार : संपादक 'आजकल' (हिन्दी), पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 387069



इस प्रकार करता है —

१ वीक्ष्य मधुरांश्च निराम्य शब्दान्
 २ न भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः ।
 ३ स्मरति नूनमबोधपूर्वं
 ४ यथाणि जननान्तर सौहृदानि ॥

पर दृश्यों को देखकर और मीठे शब्दों
 न भी उदास हो जायें, तो यही समझन
 में पिछले जन्मों की वे प्रेम-स्मृतियां ज
 तना के भीतर अचेत रूप से सोयी पड़ी

□ रतनलाल जोशी

फ्रायड की स्थापना के साथ इन उदाहरणों
 फ्रायड के महत्व को नगण्य करना नहीं
 कि फ्रायड ने मानवीय चेतना के वि
 अनुसंधान किया, वे हमारे ही यहां के स
 नहीं, संसार के प्रत्येक देश के साहित्य-न
 बीज रूप से अनुप्राणित हैं। अन्तर यह
 जन्य हैं और फ्रायड में प्रयोगजन्य। कारि
 के रहस्यों का उद्घाटन अनुभूति वे
 सके विपरीत, फ्रायड वैज्ञानिक थे—कट्टर
 और, वैज्ञानिक मन के रहस्यों का उद्घ
 अनुसंधान के माध्यम से।

कल्पित के प्रति बुद्धि का मोह बड़ा
 ड की सिद्धियों के साथ तो आकर्षण क
 था और वह यह कि फ्रायड ने यौन
 चेतन-अवचेतन मानस की मूल प्रेरक शक्ति
 ड के अनुसार, आदिम सभ्यता का
 विकास के विभिन्न स्तरों को पा

मनुष्य को अनेक वर्जनाओं में जकड़ता चला गया। फलतः व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व-संघर्ष भी उत्तरोत्तर जटिल और घनीभूत होता गया। व्यक्ति अपने अकेले तई समाज की सामूहिक सत्ता के सम्मुख सदैव असमर्थ एवं निरुपाय रहा है। अतः उसके सारे मनोवेग दमित होकर मन के अवचेतन गुहा-गह्वरों में जमा होते गये। चेतन के सहज स्पर्श से एकदम परे, उससे अज्ञेय एवं अभेद्य।

नवीन मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, ये ही काम-कुंठाएं जब किसी बाहरी घटना या प्रसंग का अग्नि-स्फूर्लिंग पाकर धक्का उठती हैं, तो चेतन एवं अवचेतन के बीच अति जटिल संघर्ष शुरू हो जाता है। फ्रायड की भाषा में इस संघर्ष का नाम है—‘काम्प्लेक्स’! और यह काम्प्लेक्स व्यक्ति को ही नहीं, समाज को भी भूकम्पों की भांति झकझोरता रहता है। फ्रायड के मत में, व्यक्ति के दैनिक जीवन की सारी प्रवृत्तियां इन्हीं काम्प्लेक्सों द्वारा परिचालित होती रहती हैं।

फ्रायड ने एक वैज्ञानिक की तृप्ति के अनुसार, इस काम भावना को विश्लेषण की चरम परिणति तक पहुंचाया है। उसके अनुसार काम-कुंठाओं की तीन स्थितियां हैं—आत्म रति, मातृ रति और विजातीय रति। आत्म-रति की स्थिति में व्यक्ति अपने आप से प्रेम करता है। यह मूलतः शैशवावस्था की प्रवृत्ति है। किन्तु रोग के अथवा वैयक्तिक काम्प्लेक्स के रूप में प्रौढ़ावस्था तक प्रायः यह प्रवृत्ति आंशिक रूप से सक्रिय रहती पायी जाती है। थोड़ा ब्यस्क होने पर लड़का अपनी माता से और लड़की अपने पिता से प्रेम करती है। यह मातृरति की स्थिति है, किन्तु सामाजिक प्रतिबन्धों एवं नियम-मर्यादाओं के कारण रति का यह आग्रह भी अपनी तृप्ति नहीं पा सकता। फलतः यह भी दमित दलित रूप से अवचेतन में अवसन्न अपने प्रतिकार खोजता रहता है। इस प्रकार यह भी काम्प्लेक्स के रूप में भीतर-ही-भीतर सुलगता रहता है। इसके उपरान्त विजातीय रति की स्थिति आती है। काम-कुंठाओं के ये तीनों रूप साहित्य-सृजन की अपरिमित प्रेरणाओं से समृद्ध हैं। क्योंकि आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के अनुसार, रति अथवा राग ही रस का नियन्ता है।

इन काम-कुंठाओं के प्रकटीकरण अथवा उदात्तीकरण के लिए फ्रायड ने कुछ मार्गों की कल्पना की है—वे हैं, हमारे सुप्त एवं जाग्रत अवस्था के स्वप्न, कला एवं साहित्य की सृजनानुर अनुभूतियां अथवा हमारे दैनिक जीवन के विक्षेप एवं असंगतियां।

संक्षेप में, यही है फ्रायड के जीवन-भर की अनुसंधान-तपस्या और उसकी सिद्धियां, जो वन्य-दावानल की भांति बौद्धिक स्तरों के साथ-साथ, तत्कालीन साहित्य रचना की भाव-भूमि पर भी फैलीं। फलतः कई प्रकृत प्रतिभाएं उनकी लपेट में अपना स्वाभाविक सृजन-स्फुरण ही नहीं खो बैठीं, यौन-तत्वात्मक मनोविश्लेषण के माध्यम से केवल अन्तर्मन के

अनुमानात्मक विश्लेषण में ही साहित्य-सृजन की चरम सिद्धि मानने लगीं। किन्तु यह विश्लेषण वस्तुतः वैसा ही निष्प्राण एवं गणितीय था, जैसा कि परवर्ती रीतिकालीन कवि वात्स्यायन के सूत्रों की नकल में, शृंगार रस की निष्पत्ति के लक्ष्य से किया करते थे। फ्रांस के ज्यां पाल सार्त्र की प्रारम्भिक कृतियां, वेलरी के उपन्यास, इंग्लैंड के डी. एच. लारेंस, जेम्स ज्वायस, एथिल मैनिन एवं इटली के मोरेविया एवं तोगोलिया सभी फ्रायड के इस काम-मूलक मनोविश्लेषण के सम्मोहन में आ गये थे। डी. एच. लारेंस की दो कृतियां—‘वीमेन इन लव’ और ‘लेडी चेटरलीज लवर’ तो जैसे फ्रायड की ‘इडीपस’ ग्रन्थ के व्यापक विस्तीर्ण क्रीड़ा-क्षेत्र ही हैं। ज्वायस का ‘यूलीसीज’ भी इसी प्रकार यौन-दमन से प्रसूत अन्तर्द्वन्द्व का एक अच्छा-खासा भाष्य ही है।

भारतीय साहित्य-रचना के क्षेत्र में भी फ्रायड का यह काम-तत्वात्मक मनोविश्लेषण कम सम्मोहक नहीं प्रमाणित हुआ। हिन्दी, बंगला, मराठी, मलयालम और तमिल के साहित्यकारों में फ्रायड का यह ज्वर तेजी से फैला। कई नामी-गरामी लेखकों ने इस ‘परधर्मोभयावह’ को अपनाकर अपनी प्रतिष्ठा ताक पर रख दी।

जीवन में काम-तत्त्व का महत्व अपरिमेय है। मोहन-जो-दड़ो के उत्खनन में प्राप्त शिवलिङ्गों तक में इसकी स्पष्ट स्वीकृति है अतः मोटे तौर पर फ्रायड के प्रयोग-निष्कर्षों से किसी को इंकार नहीं हो सकता। किन्तु काम-भावना द्विपक्षीय है। उसका एक पक्ष उद्दाम है, दूसरा उदात्त। आज के सुप्रसिद्ध मानसशास्त्री रांक की उपपत्ति के अनुसार, काम-भावना के भीतर प्रसुप्त शक्ति के विशाल समुद्र कैद पड़े हैं, जिनकी निरंकुश मुक्ति जहां मनुष्य के समस्त जीवन को खतरे में डाल सकती है, वहीं उनका सुनियंत्रित नियोजन व्यक्ति एवं समाज दोनों के उन्नयन की काफी लम्बी मंजिल भी तय कर सकता है।

साथ ही, मनोविज्ञान की नयी खोजों के प्रकाश में फ्रायड का यह निरपेक्ष निष्कर्ष भी सही नहीं है कि काम-तत्त्व ही मनुष्य के जीवन-प्रवाह की मूल प्रेरक शक्ति है। वास्तव में, काम-तत्त्व के अलावा भी मानवीय जीवन को घरे संकड़ों-हजारों ऐसी बलवती एवं दुर्जय भावधाराएं हैं जो हमें बाहर-भीतर से खींच-धसीट कर इस अविनाशी काल-संघर्ष के केन्द्र की ओर ढकेलती रहती हैं जिसे हम जीवन कहते हैं।

फ्रायड की इस उपर्युक्त भ्रान्ति का परिहार युंग एवं आडलर ने किया। उन्होंने फ्रायड के मनोविज्ञान को फ्रायड के ही जीवनकाल में दोहराया और स्थिर किया कि मनुष्य के इस अज्ञेय-अरिमेय मन को केवल दो-तीन खंडों में ही विभाजित करके समझा नहीं जा सकता। उसके अगणित स्तर हैं और प्रत्येक स्तर अगणित दमित मनोवेगों की लीला-भूमि है।

कुछ वर्ष पूर्व, फ्रांस की जीन सागां ने मनोविज्ञान की इस

नवीन स्थापना की संभावनाओं को साहित्य-सृजन के सन्दर्भ में परखते हुए लिखा था—“इस स्थापना के प्रकाश में आज के कवि एवं साहित्यकार के सम्मुख मन पूर्ववत् एक स्वच्छन्द और अविभाज्य इकाई नहीं है, बल्कि असंख्य स्तरों का एक अराजक संयोजन है। मन का यह एक-एक स्तर समग्र मानव-जीवन की एक चैतन्य तरंग है। फलतः कवि अथवा कलाकार की जिज्ञासा एवं प्रेरणा को जाग्रत करने के लिए उसके भीतर अथाह आकर्षण है। साहित्य अथवा कला वस्तुतः मन के ही दो रसात्मक भाष्य हैं !”

मन के इस विश्लेषण ने बीसवीं सदी के प्रारम्भिक उत्तरार्ध के साहित्य को, विशेषतः कथा साहित्य को, एक बिल्कुल ही नई दिशा की ओर प्रवृत्त किया—कला के रसात्मक माध्यम के रूप में आधुनिक छोटी कहानी का विकास तो मूलतः इस नये मनोविज्ञान की ही देन है। इस काल के उपन्यास भी हमें पहले की तरह चरित्र की अविभाज्य-अखंड पूर्णता न देकर जीवन के प्रति अति सक्रिय एवं संपन्न चैतन्य-खंड ही हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं और उन्हें भी प्रायः चरम निःसंग भाव से। संक्षेप में, इस काल का उपन्यासकार अपने वस्तु-संयोजन में ही नहीं, रूप-विधान में भी अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से काफी भिन्न है। तत्कालीन एवं उसके अनुगामी आज के कवि ने भी इस परिवर्तन को इसी तत्परता के साथ स्वीकार किया है। महाकाव्यों का सृजन अब कवि की स्वाभाविक अनुभूति को अभिप्रेय नहीं है। आज का कवि सम्बद्ध-सुनिश्चित एक सूत्री अभिव्यक्ति के बजाय उसके कुछ चुने हुए जीवन्त खंड ही हमें देता है। उसका तर्क है कि जब मानव-मन असंख्य असंगतियों एवं अपने में ही पूर्ण, किन्तु परस्पर असम्बद्ध अपरिमित चारित्रिक विभक्तियों की जटिल जाल है, तो उसे इस प्रकृत रूप में ही क्यों नहीं व्यक्त किया जाये ?

इस प्रकार, फ्रायड द्वारा प्रसूत मनोविश्लेषण की विकास-परम्परा ने युग की बुद्धि एवं भावना के क्षेत्र में जो क्रान्ति पैदा की उसने साहित्य एवं कला में अनेक नयी भावभूमियों को जन्म दिया। कुछ के स्तर एवं लक्ष्य-विधान भावात्मक थे और कुछ के मूलतः तन्त्रात्मक। बंगाल के शरत्चन्द्र, तमिल के जगन्नाथन्, मलयालम के गोविन्दन् और प्रारम्भ में पोर्टेक्काट भी, मराठी के माडखोलकर, भावे और हिन्दी में जैनेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा और अपनी कई कहानियों में अज्ञेय भी इस भावात्मक चित्रविधान के ही स्रष्टा-साहित्यकार रहे हैं। इनमें शरत्चन्द्र का सृजन व्यापक रूप से लोकप्रिय हुआ, जिसका कारण था उनके हृदय का विराट् मानवीय औदार्य एवं उनकी अभिव्यक्ति का आडम्बरहीन सहज-सरल प्रवाह। किन्तु शरत्चन्द्र की साहित्यानुभूति ने जिस मनोविज्ञान का अवलम्ब लिया, उसमें वे स्वयं उलझकर रह गये। अपनी कहानियों एवं उपन्यासों के पात्रों को मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण में जिस रागात्मक अनासक्ति एवं बौद्धिक निरपेक्षता की अपेक्षा थी,

उनके भीतर उसके दर्शन प्रायः नहीं होते।

स्मरण रहे कि इसी समय बंगाल में रवीन्द्रनाथ ने भी उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था और उनके ‘चौखेर बाली’ और ‘घरे-बाइरे’ दो उपन्यास प्रकाशित भी हो गये थे। ‘चौखेर बाली’ में मनोविज्ञान यद्यपि तन्त्रात्मक रूप से ही आया है, किन्तु फ्रांस के अति-यथार्थवादी कथाशिल्पियों की भांति उनमें आत्मा की उपेक्षा के साथ तन्त्र के प्रति कोई आग्रह-आकर्षण नहीं है। मनोविज्ञान के तन्तुओं को उन्होंने जहाँ-कहीं पकड़ा है, वहाँ केवल साधन के ही रूप में, साध्य के रूप में नहीं। किन्तु ‘घरे-बाइरे’ में तो रवीन्द्रनाथ ने अपने पात्रों की मनोवैज्ञानिक शिल्पसृष्टि को अपनी स्वाभाविक शिव-संकल्प-प्रेरित रसानुभूति द्वारा जीवन के विराट् चैतन्य की मानो प्रतिकृति ही बना दिया है—मानवीय दैन्य-दौर्बल्य एवं कुंठा-कार्पण्य का परिहार करने के लिए उन्होंने एक महान् कलाकार की समन्वय-दृष्टि से जीवन के बाह्य एवं अन्तरंग दोनों ध्रुवों को पारस्परिक रागात्मक विनिमय की ऐसी शृंखला में गूँथ दिया है कि दो होकर भी वे एक अद्वैत की सम्पूर्णता व्यक्त करते हैं।

अन्त में, साहित्य एवं कला की सृजनात्मक परिकल्पना एवं उसके कृतित्व में जब फ्रायड के योगदान का प्रश्न आता है, तो फिर वह पूर्व-कथित बात दोहरानी पड़ेगी कि फ्रायड युग-मनोषी नहीं था, युग-चेतना का प्रतिनिधि दार्शनिक विचारक नहीं था, वह था एक सत्यान्वेषक वैज्ञानिक—जिज्ञासा के समाधान को ही अपनी यात्रा का गन्तव्य मानने वाला रहस्यलोक का यात्री। किन्तु ईमानदारी और मनुष्य के प्रति आस्था की उसमें कमी नहीं थी। उसने अपने ढंग से मनुष्य-जैसे परम अज्ञेय-अगम्य प्राणी का अध्ययन किया—मनुष्य को और भी गहराई से समझने के लिए, उसकी दुर्बलताओं के प्रति सहिष्णु होने के लिए।

अपने निष्कर्षों को निचोड़ते हुए उसने कहा था—“मनुष्य रचनात्मक संभावनाओं का अक्षय स्रोत है, वह प्रेममय प्राणी है।” विवर्जित कुंठाओं से ऊपर उठकर मनुष्य शुद्ध-निर्विकार रूप में अपने पड़ोसी मानव को समझे, यही फ्रायड की शास्त्रीय मान्यता है।

निश्चय ही, साहित्य-सृजन के लिए यह विचारभूमि काफी उर्वर है। संभावनाओं का एक विराट् लोक इसमें प्रसुप्त है। आवश्यकता है असल में, दृष्टिकोण-रूपी बीज की। क्योंकि संभावना के खेत नहीं, दृष्टिकोण के बीज ही फसल में मूर्त होते हैं। साहित्य एवं कला में फ्रायड के मनोविश्लेषण की देन को जब हम इस रूप में परखेंगे, तभी उसकी तपस्या को सही औचित्य मिल सकेगा। दूसरे, सिद्धान्त-प्रसूत सत्य नहीं रस-प्रसूत आनन्द ही साहित्य का परिमोक्ष है। अतः फ्रायड को ग्रहण करते समय अनुभूति ही प्रबुद्ध रहे, जिज्ञासा नहीं। □

12, फीरोज गांधी मार्ग, लाजपतनगर-3, नई दिल्ली-110024

समकालीन मलयालम कविता

□ डा. एम. षण्मुखन

मलयालम की समकालीन कविता 'आधुनिकोत्तर कविता' नाम से अभिहित है। यह नाम प्रसिद्ध कवि अय्यप्प पणिकर द्वारा दिया हुआ है जिससे सभी आलोचक सहमत नहीं हैं। 'आधुनिक कविता' से समकालीन कविता का अंतर स्पष्ट करने के लिए ही उन्होंने यह नामकरण किया।

सन् साठ के प्रारंभ में प्रगतिवादी कविता की अतिरंजित सामाजिक चेतना और चङ्गपुषा की रोमांटिक चेतना के विरुद्ध जिस काव्य-पद्धति की शुरूआत हुई थी, वही आधुनिक कविता कहलाती है। आधुनिक कविता आत्मनिष्ठ एवं व्यक्तिन्मुख थी। वह पश्चिम के अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित थी, उसमें केरल की उर्वरा मिट्टी का स्पर्श नहीं था। लेकिन सन् साठ के अंतिम वर्षों में आधुनिक कविता में एक नया मोड़ आया। कविता समाजोन्मुख, प्रतिबद्ध तथा सामाजिक-क्रांति से जुड़ गयी। के. जी. शंकरपिल्ला की 'बंगाल' से शुरू होकर, आधुनिकोत्तर कविता का यह नया स्वर आट्टूर, रवि बर्मा, सच्चिदानंदन, कटमनिट्टा, रामकृष्णन तथा बालचन्द्रन चुल्लिककाड की रचनाओं में मुखरित हुआ। यह स्वर दिनोंदिन और तीव्र व तीखा होता जा रहा है।

समकालीन कविता का परिवेश

समकालीन कवियों पर परिवेश का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है और उन्होंने इसके प्रति तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट की है। वर्तमान सामाजिक परिवेश इतना त्रासद एवं नृशंस है कि जिंदगी यहां बहुत ही खतरनाक हो उठी है। सारा समाज ज्वर पीड़ित है। जीवाधार समस्याओं के साथ खून, डकैती, चोरी, बलात्कार आदि के कारण सामाजिक जीवन भयावह हो गया है। निरर्थक विभीषिकायें मानव को पागलपन की डरावनी स्थिति की ओर घसीटे ले जा रही हैं। और उनकी जिंदगी "आत्महत्या और खून के बीच फ़रार होती, एक चीख की तरह हो गयी है।"

आज समस्या सिर्फ़ रोटी की नहीं है। रूस और चीन में सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में जो क्रांतियां हुई थीं, उनकी परिणति ने हमें इस सत्य का तीखा अहसास कराया है। अधिकार का मोह और लोभ क्रांति के मूल्यों का अतिक्रमण करने लगे हैं। मानव-समाज की इस क्रूर एवं दुर्निवार अवस्था से मुक्ति, कविता की अगाध आत्मीयता के सहारे ही संभव है। इसलिए आज कविता-रचना एक दायित्वपूर्ण वृत्ति है।

विडंबना है कि आज सत्य का स्वीकार और सत्य की संवेदना बहुत ही कठिन एवं त्रासद है। सत्य हमारे अंत को झुलसानेवाली ज्वाला के रूप में ही अवतरित होता है। अपनी

जिंदगी को सुरक्षित रखते हुए आज कवि कविता लिख नहीं सकता है। पर कवि समाज का पहरेदार है। सामाजिक असलियतों की तीव्र अभिव्यक्ति उसका दायित्व है। परिवेश की नृशंसता की वजह से विसंगतियों और अनीतियों के प्रति कवि की सक्रिय प्रतिक्रिया यद्यपि उसके व्यक्तित्व का हनन करती है, समाजद्रोही के रूप में उसका चित्रण होता है, फिर भी कवि चुप नहीं रहता। जैसे "एक कुत्ता डर के मारे भौंके बिना नहीं रहता है" वैसे ही कवि भी सत्य की आवाज बुलन्द किये बिना नहीं रह सकता है। उसके हृदय में "प्रज्वलित कविता है जो मृत्यु के मुंह में बैठकर सपना देखती है, खामोशी में बैठकर गाती है और पीड़ा व दर्द के बीच भी सिर तानकर सत्य को बुलन्द करती है।" और कवि खुद इस तीक्ष्ण सत्य से अवगत है कि "एक कवि की आत्महत्या उसकी आखिरी कविता है।" (सच्चिदानंदन) "उसकी सबसे अच्छी कविता उसकी मृत्यु ही है।" (बालचन्द्रन चुल्लिककाड)

कविता कर्म है—

समकालीन कवि कविता-रचना को खेत-जोतने और बोने की तरह ही मेहनत मानते हैं। वे इस बात से पूर्णतः सचेत हैं कि सृजन सिर्फ़ मनोरंजन के वास्ते नहीं हो सकता है उसका आदमी व आदमी की जिंदगी से इतना अटूट संबंध है कि कविता के शब्द-शब्द के बीच जो खाली जगह है, वहां आदमी कैद है और असल में वही कविता है। सच्चिदानंदन ने कविता के सत्य तथा उसके कर्म व मर्म की सही अभिव्यक्ति यों दी है—

कविता क्रिया है

हर शब्द को

सागर बनाने की प्रक्रिया।

जब दुनिया हमें निहत्था बना देती है

जब हवा बहा ले जाती है

चीखों को भी

तब हम असहाय हो

सहारा मांगते

शब्द की ओर ही

वापस आते हैं।

कवि होने का मतलब

सिर्फ़

शहनाई वादक बनना नहीं है।

उन्होंने अपनी कविता के संबंध में यों लिखा भी है— "मेरी कविता का स्रोत जिंदगी और प्रकृति है। उसकी शुरूआत

आशयों से नहीं, जिंदगी से होती है। वह जिंदगी से शुरू होकर जिंदगी से गुजरकर जिंदगी की ओर वापस आती है।”

समकालीन कवि प्रतिबद्धता का मूल्यांकन भी उसे जिंदगी से तथा जिंदगी के संघर्षों से जोड़कर ही करता है। उसकी राय में जो कविता को संघर्ष के रूप में रूपायित करता है, वही प्रतिबद्ध कवि है। सच्चिदानंदन के अनुसार “मौलिक रूप में प्रतिबद्धता जनता और जनता के संघर्ष के प्रति कवि की प्रतिबद्धता है।” कटभिनट्टा रामकृष्णन की राय में मानव-समाज की पीड़ा को आत्मसात् करने की सक्षमता में ही वर्तमान कविता की उपादेयता निहित है। सिर्फ सिद्धान्त के प्रति प्रतिबद्ध रहने से काम नहीं चलेगा। हमें जनता की जिंदगी को समझने के साथ उसे आत्मसात् भी करना चाहिए। इसके लिए ‘कमिटमेंट’ से ज्यादा ‘इन्वोलवमेंट’ की जरूरत है।

सामाजिक क्रांति के लिए प्राण तक कुर्बान करने को उद्धत युवा-क्रांतिकारियों के प्रति समकालीन कवियों के मन में विशेष ममता है। उनके मानस के साथ कवि की इतनी आत्मीयता है कि एक क्रांतिकारी कैदी को संबोधित करते हुए वह घोषणा करता है—

तू सलीब पर बढ़ते मानव-पुत्र का
प्रज्वलित खून है तो
मैं उस मां का नयन नीर हूं
जिसकी गोद में
पुत्र की मौत हो गयी है।
तू सूखी धरती की चिर पिपासा को
बुझानेवाली वर्षा है तो
मैं वेदना की काली-काली घटाओं
से निकलकर
इस धरती को
भुलसानेवाली बिजली हूं।

(बालचन्द्रन चुल्लिककाड)

समकालीन कवि जनता से निकट संबंध रखने के आकांक्षी हैं। इसके लिए वे अपनी कविताओं के साथ मजदूरों और कृषकों के बीच जाते हैं और चौराहों तथा कवि गोष्ठियों में कविता-वाचन के जरिए जन-मानस की निगूढ़ अंतस्थलियों में गोते लगाने की कोशिश भी करते हैं। इसका उचित प्रभाव भी पड़ रहा है। कविता युवा-मानस की तह में चुभ कर घुसने लगी है और उन्हें प्रेरणा भी दे रही है।

क्रांति का स्वर

सामाजिक परिवेश की नृशंसता के प्रति कवि के मन में तीव्र आक्रोश है। वे कविता के द्वारा अपनी तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं। कवि सामाजिक क्रांति के लिए लालायित हैं, इसलिए उनकी यही कामना है कि उनकी कविता क्रांति की प्रेरणा शक्ति बने। कविता शब्दों से बनती है। अतः वे शब्द-शब्द में बारूद भरने की कोशिश करते हैं। शब्दों को तोप

बनाने का श्रम करते हैं। और कविता को हथियार के रूप में प्रयोग करने की तीव्र आकांक्षा के साथ जीते हैं। कभी-कभी यह बात उनके मन में कौंध जाती है कि “गीत का मशाल बनाकर शोषकों के चेहरे को झुलस दें।” (के. जी. शंकरपिल्ला)

क्रांतिकारी होने के कारण ही कवि नये जीवन-मूल्यों की भी कल्पना करते हैं। उनकी राय में जो मूल्य हिंसा और शोषण पर आयातित एक समाज की रक्षा करते हों, उन्हें प्यार या अहिंसा नहीं कह सकते। जिन हिंस्र पशुओं का शिकार अनिवार्य है, उन्हें विचरने देना, प्यार नहीं है। इसलिए सच्चिदानंदन लिखते हैं कि बोधि-वृक्ष की छाया में तपस्या-लीन गौतम के सिरहाने पर विष से सना एक तीर भी अवश्य रखना है, इसलिए कि यदि गौतम की दुःख से मुक्ति संभव न हो तो सारी दुनिया को मुंडन से बचाने के लिए वह खुद आत्मत्याग तो कर सकता है।

समकालीन कवि गौतम बुद्ध और ईसामसीह की जिंदगी का समकालीन परिवेश की पृष्ठभूमि में ही मूल्यांकन करते हैं। आज अहिंसा और शांति की राहें रक्तस्नात हैं कवि देखते हैं—

सूखी सुवर्णरेखा नदी के ऊपर रोष का
पानी बरसाने वाले बुद्ध का काला सिर
उभर रहा है। (सच्चिदानंदन)

और यह सत्य पुकार-पुकार कर कहते हैं—

मेहनतियों और भारवाहियों को
शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने का
सबक सिखाने के बजाय
उन्हें गुलामी में छोड़कर
मालिकों के हृदय-परिवर्तन की
कोशिश करने का नतीजा
सलीब पर लटककर मृत्यु ही है। (सच्चिदानंदन)

काल्पनिकता व मिथ्या विश्वासों से दूर—

समकालीन कवियों ने अपनी क्रांति-कविता की तीव्रता के लिए काल्पनिकता से कोसों दूर रहने की कोशिश की है। काल्पनिकता की जर्जरता के विरुद्ध इटइशेरी गोविन्दन नायर, एन.बी. कृष्ण वारियर, अय्यप्प पणिकूर आदि कवियों ने आवाज उठायी थी। कवि पूछते हैं—

हे ईश्वर, तेरा इन्द्रधनुष कहां है ?
मैंने कल रात, उसके टूटने की आवाज सुनी थी।
जैसे अग्नि संस्कार के वक्त
ब्राह्मण की हड्डी टूट जाती है।

काल्पनिक कविता नारी और नारी-सौन्दर्य के जाल में फंस गयी थी। मत्त भ्रमर सी भूमकर कविता नारी के चारों ओर मंडरा रही थी। लेकिन समकालीन कविता में नारी के प्रति सहानुभूति भी झलकती है। उसके सौन्दर्य की उपेक्षा करने के लिए कवि और कविता मजबूर हो गए हैं।

उमिला,
तुम्हारे सघन घुंघराले बाल

लम्बी बाहें

लाल-लाल अधर

और तुम्हारे छोटे-छोटे स्तन

वसंत ऋतु के बीतते-बीतते

उभर आतीं तुम्हारी सिसकियां

मैं फिर एक बार

भूलने को मजबूर हो गया हूं।

(के.जी. शंकरपिल्ला)

फिर भी काल्पनिकता से पूर्ण-मुक्ति संभव नहीं हो पायी है। समकालीन कविता में भी उसके संघटक तत्वों की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न रूप में होती रही है। असल में सौन्दर्यशास्त्र के धरातल पर काल्पनिकता का सर्वथा त्याग एक चुनौती है। उससे पूर्ण-मुक्ति तभी संभव हो सकती है जब कवि आत्मसंघर्ष के द्वारा अपना कायाकल्प करने में सक्षम निकलता है। समकालीन कवि इस बात से भी पूर्णतः सचेत है कि सिर्फ मार्क्सवादी सिद्धांत को अपनाने से क्रांति-कविता की संरचना नहीं हो सकती है। कवि को अनुभवों से गुजरना चाहिए। अनुभवों की उर्वर भूमि जनता की जिंदगी है। उस जिंदगी को आत्मसात करते हुए, उनके संघर्षों में भाग लेते हुए तथा आत्मसंघर्ष के द्वारा अपना कायाकल्प करके ही वह कविता लिख सकता है।

नवीन शिल्प

कथ्य की नवीनता, नवीन शिल्प की मांग करती है। समकालीन कवियों ने अपने भावों को सही अभिव्यक्ति के लिए नये शब्दों, उपमाओं और बिंबों की उद्भावना की है। समूची भाषा को इन्होंने कसमसा दिया है। उन्होंने स्वच्छन्द छन्द को

अपनाया, लेकिन ताल और लय को नहीं छोड़ा। कविता को गद्य की सपाट खुरदरी जमीन पर लाकर नया मोड़ दिया। शब्दों के चुनाव में इन कवियों ने सावधानी दिखायी है क्योंकि उन्हें मालूम है कि कविता ध्वनि है, वह शब्दों से बनती है। जब शब्दों में नक्षत्रों की दीप्ति प्रज्वलित होने लगती है तभी कविता बनती है।

कवि कहता है कि इस समाज की ऐसी स्थिति हो गयी है कि यहां “अगरबत्तियां जलते वक्त, जलती लाश की बदबू आती है।” मूल्यों का विघटन हो गया है। आदमी बेसहारा है। ऐसा लगता है कि अमानवीय आचरण इस दानवी दुनिया का हक है। इसलिए, “एक नहीं चांदनी का जो अहाते में फंस गई है, बलात्कार होता है।” (बालचन्द्रन)। सामाजिक परिवेश ऐसा संतप्त है कि कमरे में बैठे व्यक्ति को लगता है कि “बीच-बीच में/एक मृत्यु गीत का थका पद छाप/सीढ़ियां चढ़ता आ रहा है।” (बालचन्द्रन)

संक्षेप में यही कह सकते हैं कि समकालीन कवियों की कविता ने जनता की जिंदगी से तादात्म्य स्थापित कर लिया है। समकालीन कवियों में अग्रगण्य सच्चिदानंदन की कविता का मूल्यांकन करते हुए प्रसिद्ध आलोचक नरेन्द्र प्रसाद ने जो विचार व्यक्त किया है वह सभी कवियों पर लागू है। “वे मलयालम कविता को सुखद तन्द्रालस स्थिति से जीवन की झुलसती असलियतों की ओर खींचकर लाये। वे कभी समाज के प्रति विमुख या उदासीन नहीं रहे। इनकी सौहार्द्र की भाषा है।”

— प्राध्यापक (हिन्दी विभाग)

गवर्नमेंट बिक्टोरिया कालिज, पालघाट (उड़ीसा)

लघुकथा

लड़के ने जिद्द कर दी

□ शंकर दयाल सिंह

मेरे पड़ोसी सावजी अपने लड़के की शादी का निमंत्रण लेकर आए तो मैं चौंक पड़ा—यह तो अंग्रेजी में है!

जी हां, लड़के ने जिद्द कर दी, मैं क्या करूं?—उन्होंने उत्तर दिया।

उसने क्यों जिद्द की?—मैंने जानना चाहा।

उसका कहना था अंग्रेजी में निमंत्रण छपने पर ज्यादा रोब-दाब रहता है। आजकल बड़े-बड़े साहबों के यहां जब शादियां होती हैं, तो अंग्रेजी में ही निमंत्रण-पत्र छपते हैं।—सरलता के साथ सावजी ने अपनी बात कही।

लेकिन सावजी, आपकी ओर से ही न्योता है और मैं जानता हूं कि आप एक शब्द भी अंग्रेजी नहीं जानते हैं। इसके

साथ ही यह बताइये कि जहां-जहां आपने निमंत्रण-पत्र भेजे हैं—उनमें कौन ऐसा है जो हिन्दी नहीं जानता? और शादी कोई पंडित जी मंत्रों के द्वारा संपन्न करायेंगे या फिर कोई पादरी बाईबिल के द्वारा?—मैंने अपनी झल्लाहट उनके सामने पेश की।

वे मेरा मुंह देखने लगे, उनकी समझ में यह बात धंसी ही नहीं। तब मैंने अपनी बात स्पष्टता और दृढ़ता के साथ कही—सावजी, मैं इस शादी में न आ सकूंगा। मैंने अपना नियम बना रखा है कि ऐसे मांगलिक अवसरों पर हिन्दी-भाषी लोगों की ओर से यदि अंग्रेजी में निमंत्रण आएंगे तो नहीं भाग लूंगा।

वे मेरी ओर कुछ निरीह भाव से देखने लगे, मानों मैं अभी भी बहुत पिछड़ा हुआ हूं। मैं शादी में न गया तो क्या होता है और लोग तो आएंगे ही तथा शादी होगी तो रोब-दाब से ही। □

कामता-सदन, बोरिंग रोड, पटना-9

हिन्दी की कुछ पत्रिकाएं

हिन्दी में लघु पत्रिकाओं का प्रकाशन कुछ साहित्यिक संस्थाओं से होता है और कुछ व्यक्तिगत धरातल पर। व्यक्तिगत धरातल में कई बार कुछ साहित्यकार एकत्र होकर पत्रिका का प्रकाशन करते हैं और अनेक बार केवल एक व्यक्ति अपनी लगन एवं साहित्य के मैदान में कूदता है। हिन्दी में कुछ लघु पत्रिकाएं ऐसी भी रही हैं जिन्होंने साहित्यिक आन्दोलनों को शुरू किया है तथा सम्पादकों ने स्वयं को स्थापित करने के लिए पत्रिका को एक हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। ऐसी पत्रिकाएं दीर्घजीवी नहीं होतीं और कुछ अंक निकलने के बाद काल-कवलित हो जाती हैं। (लेकिन हिन्दी की लघु पत्रिकाएं नये रचनाकार को उभारने, स्थानीय धरातल पर साहित्यिक गतिविधियों को गतिशील बनाने, पाठकों के सम्मुख समकालीन मुद्दों को उठाने तथा राजनीति एवं गुटबन्दी के आधार पर लेखकों की प्रशंसा एवं निन्दा करने आदि कार्य करती रही हैं।) लघु पत्रिकाओं का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि हिन्दी के अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकार पहले लघु पत्रिकाओं में छपे हैं और राष्ट्रीय स्वीकृति उन्हें बाद में मिली है। इसके बावजूद लघु पत्रिकाओं के चरित्र में सुधार करने की बड़ी आवश्यकता है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

मासिक पत्रिकाएं

मासिक पत्रिकाओं में मैं इस बार सबसे पहले 'बीणा' (श्री म. मा. हिन्दी साहित्य समिति का मासिक मुख पत्र, संपादक डा. श्याम सुन्दर व्यास, 11 रवीन्द्रनाथ टेंगोर मार्ग, दक्षिण तुकोगंज, इन्दौर-1) का उल्लेख करना चाहूंगा जिसका जनवरी, 1985 का अंक मेरे सामने है। 'बीणा' सन् 1927 से नियमित रूप से निकल रही है जो अपने आप में एक रिकार्ड है। यद्यपि यह पत्रिका हिन्दी साहित्य समिति की है, परन्तु इन्दौर के हिन्दी प्रेमियों, संस्था के समझदार सदस्यों तथा योग्य सम्पादकों के बिना कोई भी पत्रिका 57 वर्षों तक चल नहीं सकती। अतः इन व्यक्तियों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

'बीणा' का स्वरूप हिन्दी की आम लघु पत्रिकाओं के स्वरूप से भिन्न है। इस पत्रिका में मध्यप्रदेश के ही नहीं, देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के साहित्यकारों के लेख प्रकाशित होते हैं जो स्तरीय ही नहीं होते, बल्कि नये प्रश्नों एवं नयी

समस्याओं पर आधारित होते हैं। 'बीणा' का सम्बन्ध किसी राजनीति से नहीं है, उसके पुराने अंकों को देखकर कहा जा सकता है कि उसके पृष्ठों पर हर रंग के लेखकों की रचनाएं छपती रही हैं। 'बीणा' के आलोच्य अंक में अंचल, चन्द्रसेन 'विराट', रत्नेश 'कुसुमाकर', डॉ. श्यामसुन्दर दुबे, बटुक चतुर्वेदी, इन्दु वशिष्ठ, सुरेशचन्द्र त्यागी, किशोर काबरा, लीना फर्नांडीस की कविताएं छपी हैं। लेखों में डॉ. भगीरथ मिश्र का लेख 'साहित्य में इतिहास बोध', डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी का 'आधुनिक समीक्षा के अन्य प्रमुख आधार स्तम्भ और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी', डॉ. शान्तिलाल जैन का 'नाट्यालोचन: नये प्रतिमान की तलाश', डॉ. ओमप्रकाश भाटिया 'अराज' का 'समकालीन सैद्धान्तिक समीक्षा: रस संदर्भ', रामविलास शर्मा का 'मालवा में हिन्दी लेखन: एक विहगावलोकन' तथा डॉ. राजेन्द्र शर्मा का 'बीट आन्दोलन व साहित्य: एक भूमिका' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पत्रिका में सम्पादकीय, पुस्तक समीक्षा आदि स्तम्भ भी हैं। कुल मिलाकर पत्रिका अपने साहित्यिक दायित्वों को निभा रही है, फिर भी कुछ नया करने की गुंजाइश एवं सम्भावना सदैव रहती है। पत्रिका में युवा रचनाकारों का मूल्यांकन भी होना चाहिए।

□ डा. कमल किशोर गोयनका

मासिक पत्रिकाओं में 'नई धारा' (सम्पादक-उदयरज सिंह, शेखपुरा, पटना-14) ने अपने प्रकाशन वर्ष के 35 वर्ष पूरे किये हैं। यह पत्रिका किसी संस्था की न होकर एक साहित्य के प्रति समर्पित व्यक्ति की है जो पूरे उत्साह से पत्रिका को निकाले जा रहे हैं। 'नई धारा' के फरवरी-मार्च, 1985 के अंक में कविता, लेख, कहानी, निबन्ध, यात्रावृत्त, समालोचना तथा पुस्तक-समीक्षा स्तम्भ के अन्तर्गत सामग्री दी गयी है तथा एक लेख निराला जयन्ती पर भी है। दूसरी मासिक पत्रिका 'बेला' (सम्पादक-जानकी वल्लभ शास्त्री, निराला निकेतन, मुजफ्फरपुर-842001) का उल्लेख करना चाहूंगा जिसका नवम्बर-दिसम्बर, 84 का अंक मेरे सामने है। यह पत्रिका विगत तीन वर्षों से निकल रही है और हिन्दी के स्वनामधन्य कवि आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री इसके सम्पादक हैं। इस अंक में शास्त्री जी की कविता के अतिरिक्त निराला पर शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, शिवमंगल सिंह 'सुमन', तथा बीरेन्द्र मिश्र की कविताएं हैं। जानकी वल्लभ शास्त्री के धारावाहिक उपन्यास 'कर्मक्षेत्रे मरुक्षेत्रे' की एक किस्त है तथा उनके ही महाकाव्य 'राधा' पर डॉ. राजेन्द्र गौतम तथा डॉ. अवधेश्वर अरुण के लेख हैं। इस प्रकार पत्रिका के केन्द्र में स्वयं सम्पादक हैं और उनके लेखकीय व्यक्तित्व की छाप है। यह प्रसन्नता की बात है कि सम्पादक ने 'नई उमर की नई फसल' स्तम्भ के

अन्तर्गत रामप्रवेश सिंह की कहानी 'आज का दरोगा' प्रकाशित की है। इससे स्पष्ट है कि नये लेखकों के प्रति अपने दायित्व को पत्रिका निभा रही है। पत्रिका के गेटअप तथा मुद्रण में सुधार लाने की ओर अवश्य ही ध्यान दिया जाना चाहिए।

त्रैमासिक पत्रिकाएं

हिन्दी की त्रैमासिक पत्रिकाओं में 'प्रसंग', 'विचार कविता', 'अकविता', 'ऋतुचक्र', 'इवदिल', 'शारदा', 'मिनियुग', 'जन अर्पण' की चर्चा करना चाहूंगा। 'प्रसंग' (सम्पादक-शम्भुबादल, सरौनी खुर्द, डाकखाना-जगन्नाथ धाम, हजारीबाग-825317, बिहार) का समीक्षा अंक (जनवरी, 85) मेरे सामने है जिसका सबसे पहले उल्लेख करना आवश्यक है। 'प्रसंग' एक स्तरीय पत्रिका है, परन्तु उसकी सम्पादकीय दृष्टि पर राजनीति इतनी हावी है कि बिना किसी प्रसंग के सम्पादक अपने 'सम्पादकीय' में महात्मा गांधी, जयप्रकाश, मुरारजी देसाई आदि को अपशब्द कहने लगता है। कोई भी व्यक्ति किसी भी नेता के बारे में कोई भी राय रखने के लिए स्वतन्त्र होता है परन्तु जब वही राय सार्वजनिक रूप से व्यक्त की जाती है तो प्रासंगिक होनी चाहिए। और उसे तर्क की मजबूत नींव पर आधारित होना चाहिए। सम्पादक अपने 'सम्पादकीय' में पहले समीक्षा और समीक्षक की बात कहता है, परन्तु अगले अवतरण में 'प्रभावी अभिनय करने वाले' मुरारजी, गांधी, जयप्रकाश आदि की बिना किसी तर्क के आलोचना करने लगता है। सम्पादक के अनुसार महात्मा गांधी ने जनता को दिग्भ्रमित किया, दोस्त और दुश्मन के प्रति समभाव रखा, जनता की विरोधी भावनाओं को गलत मोड़ दिया तथा अंग्रेजी पूंजीवादी जाल के शिकार हो गये। महात्मा गांधी की आलोचना करें, खूब कर, परन्तु तर्क से करें, बचकाने फतवे न दें। महात्मा गांधी के महत्व एवं योगदान को उन्हें पूरी तौर से समझे बिना तथा स्वाधीनता आन्दोलन में उनकी सक्रियता एवं नेतृत्व को जाने बिना समझा नहीं जा सकता। आश्चर्य इस बात का है कि सम्पादक गांधी की तर्कहीन आलोचना ही नहीं करता, गांधी को 'सत्य' मानने वाले करोड़ों भारतीयों को 'भोले-भोले कहकर मूर्ख' करार देता है।

वैसे पत्रिका का स्तर अन्य पत्रिकाओं की तुलना में काफी ऊंचा है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस अंक में डॉ. चन्द्रेश्वर कर्ण का 'राधाकृष्ण की कहानियाँ', शम्भूनाथ का 'धूमिल का जनवाद' तथा डा. विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का 'सचिदानंद धूमकेतु की कहानियाँ' लेख किसी भी पत्रिका के गौरव बन सकते हैं। ये लेख पाठक के ज्ञान को विस्तृत करते हैं। चाहे समीक्षकों के कई निष्कर्षों से आपकी सहमति न भी हो। कविताओं में मेवाड़ी, निमेष, राजेन्द्र उपाध्याय, सुवास सिन्हा तथा परेश धर की कविताएं तथा पुस्तक समीक्षाओं में 'दूसरी परम्परा की खोज' (डॉ. नामवर सिंह) 'कविता की मुक्ति'

(नन्दकिशोर नवल) 'साहित्य और इतिहास दृष्टि' (मैनेजर पाण्डे) 'आधुनिक हिन्दी नाटकों में खलनायकत्व' (डॉ. त्रिपुरारी शरण श्रीवास्तव) 'उस जनपद का कवि हूँ' (त्रिलोचन) 'यहां से देखो' (केदारनाथसिंह), 'खुली आंखों में आकाश' (दिविक रमेश) 'ऋण गुण ऋण' (राजेन्द्र कुमार), 'जागते रहो सोने वालो' (गोरख पाण्डे), 'मैं हूँ, यहां हूँ' (भारत यायावर), 'अलेक्सान्द्र ती कविताएं' तथा 'मायाकोव्स्की : क्रान्ति पूर्व की कविता' (अनुवाद वरयाम सिंह) 'दर्पण भूट ना बोले' (श्रवण कुमार गोस्वामी) 'छप्पर टोला' (सतीश जमाली) 'अपना पोस्टर' (विष्णु चन्द्र शर्मा), 'दरियाई घोड़ा' (उदय प्रकाश), 'मालिक के मित्र' (बलराम) आदि की समीक्षाएं दी गयी हैं। एक लघु पत्रिका में इतनी सामग्री का एक साथ होना सम्पादक/प्रकाशक के प्रयासों एवं साधनों का प्रमाण है।

त्रैमासिक पत्रिकाओं में 'विचार कविता' (संपादक—बलदेव वंशी, ए-3, 283 पश्चिम बिहार, नयी दिल्ली-110063) का मार्च, 84 का अंक मेरे पास है जिसमें विद्वान सम्पादक ने विचार कविता को लेकर अज्ञेय, जगदीश गुप्त, महादेवी वर्मा, कृष्ण दत्त पालीवाल आदि को कठघरे में खड़ा कर दिया है और पूरी ताकत से यह स्थापित करने की चेष्टा की है कि विचार कविता होती है, चाहे अज्ञेय, महादेवी वर्मा आदि उसे अस्वीकार करते रहें। कविता में विचार तत्व को कभी अस्वीकार नहीं किया गया, परन्तु प्रश्न यह है कि कविता का आधार भाव है या विचार, उसका भवन भाव की नींव पर टिका है या विचार की। यदि यह माना जाय कि बलदेव वंशी तथा कुछ और कवि पहली बार हिन्दी में विचार कविता दे रहे हैं, वे उसके जनक हैं और यह उनकी मौलिक उद्भावना है तो कबीर से लेकर आज तक काव्य-यात्रा के प्रति अनभिज्ञता ही स्पष्ट होगी। कोई कवि यह नहीं कहता कि कविता से विचार बहिष्कृत है, लेकिन वह यह अवश्य कहता है कि मात्र विचार कविता नहीं हो सकता। जो कविता हमारे हृदय को नहीं छूती विचारों में उद्वेलन उत्पन्न नहीं करती, वह रचनाकार के लिए भी शीघ्र ही मर जाती है।

इस अंक में रामदरश मिश्र, कन्हैयालाल नन्दन, बलदेव वंशी नरेन्द्र मोहन, ओमप्रकाश निर्मल, अनुसूया, प्रमोद त्रिवेदी, सुधा गुप्ता, नन्द किशोर तिवारी, हरिप्रकाश त्यागी, स्वदेश भारती, विमलकुमार, रश्मि मलहोत्रा आदि की कविताएं तथा डा. वेदप्रदाश अमिताभ, डा. सुरेश धींगड़ा, कृष्ण दत्त पालीवाल आदि की टिप्पणियां या लेख दिये गये हैं। इनमें से कई रचनाएं पठनीय हैं, खास तौर से कविताएं जो आज के यथार्थ को नंगा कर देती हैं। रामदरश मिश्र की कविता से ये अंश यहां उल्लेखनीय हैं :—

हाथ में बड़ी पत्रिका हो

और साथ में सरकारी प्रकाशन और मंच

तो प्रतिमान बन ही जाते हैं
फिर तो अपने कुनवे के कवि चाहे जैसे हों
महान् बन जाते हैं.....

हिन्दी की अन्य त्रैमासिक पत्रिकाओं में 'लघु आघात' 'अकविता', 'मिनी युग', 'शारदा', 'दूर्वादल', 'जनअर्पण', आदि का उल्लेख करना चाहूंगा। 'लघु आघात' (प्रधान संपादक डा. सतीश दुबे, सम्पादक विक्रम सोनी, आई-169 रविशंकर शुक्ल नगर, इन्दौर-452008) लघुकथा की त्रैमासिक है जिसके अभी तक 17 अंक निकल चुके हैं। पत्रिका के 220 नियमित ग्राहक होने पर भी वह जिस लगन एवं सुन्दरता से निकाली जा रही है इसकी प्रशंसा की जानी चाहिए तथा सम्पादक को उचित प्रोत्साहन तथा सहायता की जानी चाहिए। पत्रिका के दोनों सम्पादक लघुकथाकार हैं। अतः वे स्वयं इस बात के लिए चिन्तित प्रतीत होते हैं कि सही अर्थों में लघुकथा तथा नये प्रतिभावान लघुकथाकारों को प्रकाशित किया जाय। पत्रिका को देखने से लगता है कि लघुकथा के नाम पर इन दिनों जो चूटकलेबाजी एवं ऊल-जलूल लेखन हो रहा है, उससे सम्पादक अपनी पत्रिका को बचाने में सफल रहे हैं। पत्रिका के जनवरी-मार्च, 85 के अंक में 50 से अधिक लघुकथाएं हैं। कुछ गद्यगीत एवं गद्यकाव्य भी हैं। पत्रिका में तेजपाल चौधरी यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र', डा. कमल चोपड़ा, डा. शंकर पुणतबिकर, डा. हरिश्चन्द्र वर्मा आदि के लघुकथा की सम्वेदना एवं शिल्प पर लेख हैं जिनमें लघुकथा को एक साहित्यिक विधा के रूप में पारिभाषित करने की चेष्टा की गयी है। पत्रिका में कुछ पुस्तकों की समीक्षाएं भी हैं।

'अकविता' (सम्पादक-कृष्ण खुल्लर, 2762 राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-110055) का रूप अब वह नहीं है जो कभी जगदीश चतुर्वेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने पर था। 'अकविता' का अक्तूबर, 84-जनवरी, 85 का अंक कोरियाई कविता को समर्पित है। इसमें 'कोरियाई काव्यधारा' के शीर्षक से सम्पादकीय के साथ कुछ कोरियाई कविताएं भी दी गयी हैं जिनका अनुवाद यत्येन्द्र भटनागर, त्रिनीद सेठ तथा स्वयं सम्पादक ने किया है। पत्रिका यदि विदेशी कविता तक भी सीमित रहे तब भी वह इसी प्रकार अच्छा कार्य कर सकती है। 'मिनीयुग' (संपादक-जगदीश कश्यप, डी-32, गली सिटी पोस्ट आफिस, गाजियाबाद-201001) पत्रिका लघुकथा के उत्थान के लिए समर्पित है, ऐसा सम्पादकीय दावा है। सम्पादकों के लिए पत्रिका कमायी का साधन नहीं बल्कि एक यज्ञ है। मैं समझता हूं इसे कहने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि लघु पत्रिका के आर्थिक साधन कितने शोचनीय होते हैं, इसे हिन्दी का पाठक जानता है। पत्रिका के अक्तूबर-दिसम्बर, 84 के अंक में लघु कथा, लघु एकांकी, लघु एकालाप, नवगीत, लघु कविता, प्रादेशिक एवं विश्व लघुकथा आदि विभिन्न प्रकार की रचनाएं

दी गयी हैं जो 'मिनीयुग' नाम को सार्थक तो करती हैं, परन्तु कुछ रचनाओं को साहित्यिक मान लेने में कठिनाई होगी। पत्रिका के गेटअप में भी सुधार की आवश्यकता है। 'शारदा' (सम्पादक-व्यानन्द नारायण, चौधरी मौहल्ला, हांसी-125033) एक लघु त्रैमासिक है जो हांसी अंचल के लेखकों की प्रतिभा को उजागर करने का कार्य कर रही है। इसके 'होलिकांक' में श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने इसके प्रवेशांक की प्रशंसा की है और लिखा है कि पत्रिका अपने क्षेत्र की सौंधी गन्ध को समृद्ध एवं निखार रही है। पत्रिका में कविता, लेख, अनुवाद, राजल आदि हैं किन्तु उसे एक निश्चित रूप से देना जरूरी लगता है। 'जन अर्पण' (सम्पादक-सुनील कुमार मिश्र, तुलसीनगर, बैंक कालोनी, भागलपुर-812001) का प्रवेशांक अक्तूबर-दिसम्बर, 1984 का मेरे सामने है। पत्रिका में संक्षिप्त सम्पादकीय टिप्पणी है जिसमें पत्रिका के स्वरूप पर खुलकर बात नहीं कही गयी है और उसे 'भविष्य की घड़ियों' पर छोड़ दिया गया है जो उचित प्रतीत नहीं होता। नयी पत्रिका निकालने पर सम्पादकीय दृष्टि भी स्पष्ट होनी चाहिए। आखिर एक नयी पत्रिका क्यों? इसका उचित उत्तर ही पत्रिका निकालने का आधार बन सकता है। इस अंक में क्षेमचन्द्र 'सुमन' से इन्टरव्यू, आशारानी व्होरा का दहेज पर लेख, डॉ. रत्नाकर पांडेय का संस्कृति, धर्म और समाज पर लेख, डॉ. सुरेश धींगड़ा की कविता, डॉ. कमल चोपड़ा, विक्रम सोनी आदि की लघु कथाएं दी गयी हैं। इससे स्पष्ट है कि पत्रिका का अपना कोई निश्चित स्वरूप नहीं है।

अन्त में, मैं पाठकों का ध्यान दो पत्रिकाओं के विशेषांकों की ओर दिलाना चाहूंगा। 'आइना' (सम्पादक-राजेन्द्र प्रसाद सिंह, आधुनिका, खबड़ा रोड, मुजफ्फरपुर-842001) का 21-25 अंक 'नवगीत का विकास और मौजूदा बहस' को समर्पित है। 'नवगीत' पर इतना अच्छा विशेषांक और किसी पत्रिका का नज़र नहीं आया। शायद इसका कारण यह है कि पत्रिका के सम्पादक राजेन्द्र प्रसाद सिंह स्वयं नवगीतकार हैं तथा जिनकी सम्पादित पुस्तक 'गीतांगिनी' में 'नवगीत' शब्द का पहली बार प्रयोग हुआ। पत्रिका में सम्पादकीय के अलावा पन्द्रह लेख हैं—रामनरेश पाठक का 'परम्परित मतवादों से गीत की मुक्ति : नवगीत-छठा दशक', डॉ. नन्द किशोर नन्दन का 'नवनीतः सातवां दशक—एक सर्वेक्षण', राजेन्द्र प्रसाद सिंह का 'आठवें दशक की नवगीत कृतियां और जनबोध', प्रहलाद पटेल का 'नवें दशक में नवगीतः जन विरोध बनाम जनबोध, शिवशंकर मिश्र का 'कविता में छन्दोबद्धता का सवाल बनाम नवगीत की पड़ताल', डॉ. परम लाल गुप्त का 'नवां दशक और नवगीत की दशा', राधे लाल विजधावने का 'नवगीतः क्षमताएं, मान्यताएं, अपेक्षाएं', महेश उपाध्याय का 'नवगीत से जनगीत तक', डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ का 'आठवें दशक की सन्धि पर : (शेष पृष्ठ 33 पर)



नौवें दशक की दोस्ती

□ चन्द्रकान्ता

रोज का जैसा औसत दिन था वह, जब छोटी-छोटी घरेलू व्यस्तताओं में मधुरिमा कमरे से किचन, किचन से बरामदे और बरामदे के साथ लगे सिक पर आवा-जाही कर रही थी। बिजली के तारों पर चारेक चिड़ी-चिरौटे कतार में बैठे थे। कुछ फुदक-फुदक कर तारों में कंपन भरी भूनभूनाहट भर देते थे। मिन्नी इधर होती तो आदतन बोल पड़ती, “ममी, देखो, वन फार सारो, टू फार ज्वाय, थ्री फार ए लैटर, फोर फार ए बाय...”

मिन्नी के अल्हड़पने से बंधी-बंधी मधुरिमा ने खुले बरामदे से बाहर मकानों की पंक्तियों पर नज़र डाली। सड़क के पार।

—पीली कोठी के ग्राउंड फ्लोर पर बीसेक फुट के बगीचे में खड़ी मिसेज छिब्वर गमलों में पानी दे रही थीं। ऊपर बरसाती पर मिसेज सोनी सुबह-सुबह रस्सी-टप्पों से व्यायाम करती अपना तेज़ी से बढ़ता बज्रन घटाने में व्यस्त थीं।

सड़क पर खड़ी गाड़ियों पर चौकीदार पोच्चा फेर रहा था।

रोज की जैसी खटर-पटर, रोज के जैसे जाने-पहचाने दृश्य।

सामने के नये मकान में बहू दूध की डोलची लेकर दूध लेने जा रही थी। पीछे का दरवाज़ा खट से बजा तो मधुरिमा ने उस तरफ देखा। नये-नये आये हैं ये लोग। महीना भर ही हुआ होगा। दरवाज़ा तीस-बत्तीस के करीब लगते युवक ने बंद कर दिया। संयुक्त परिवार रहता है इस घर में। दो बहनें, कई भाई, बहुएं, माता-पिता सब एक साथ। रात देर तक बत्ती जलती रहती है। लड़कों के हंसी-ठहाके गूंजते हैं। अच्छा लगता है यह देखकर कि तेज़ी से छिन्न-भिन्न होते संयुक्त परिवारों में अभी भी ऐसे घर मौजूद हैं जहां आठ-दस व्यक्ति साथ रहते हैं और साथ रहते बर्तनों की अनिवार्य खनक-ठनक के बावजूद ये लोग, ठहाके लगाकर हंसना भूले नहीं हैं।

दूसरी बार दरवाज़ा बजा तो मधुरिमा का ध्यान आवाज़ की ओर खिंच गया। युवक दरवाज़े के पास खड़ा उसी की तरफ देख रहा था, निनिमेष।

मधुरिमा वह उम्र पार कर गई है जब किसी युवक की अन्तर्भेदी नज़रें, सीने में दो चार धड़कनें उछाल कई-कई आशा आकांक्षाओं को जन्म देने लगती है। उसने तीलिये से हाथ पोछे

और रसोईघर की ओर चली गयी। पूरा नाश्ता बनाकर ही वह बाहर आ गई और जाहिर है कि शाम तक वह युवक को लगभग भूल चुकी थी।

दूसरे दिन मधुरिमा का रेडियो-प्रोग्राम था। मधुरिमा वायलिन बजाती है। खूब सुरीला। स्वर हवा की लहरों पर कांपते, दिलों के गुंबद में गूँज बनकर छा जाते हैं। खूब डूबकर बजाती है। बड़े प्रशंसक हैं उनके। घर पर भी लोग मिलने चले आते हैं, फोन पर व पत्रों द्वारा तो बधाइयों का सिलसिला चलता ही रहता है।

इस बार का प्रोग्राम भी खासा रहा। डाइरेक्टर नंदलाल ने बधाई दी, "मधुरिमा जी, इस बार टी.वी. पर आपका सोलो हो जाय। दर्शकों को आप मुग्ध कर देंगी..."

मधुरिमा संतुष्ट सी मन-स्थिति में थी। अपने श्रम और शौक की सार्थकता महसूस कराने वाली प्रशंसा सुन मन तृप्त हो जाता है। वही तृप्ति का अहसास भीतर कहीं टहल रहा था। शाम का खाना उसने दुहरे उत्साह से बनाया। सच! छोटी-छोटी खुशियाँ मन को नये सिरों से रोज़मर्रा की ऊब-उमस सहने के लिए तैयार करती हैं।

रात को बरामदे की तरफ का जाली वाला दरवाज़ा बंद करते उसने सामने वाले घर में चहल-पहल सी देखी और देखा शीशे की खिड़की के पीछे दो बड़ी-बड़ी खोजती-सी आंखें एकटक उसी की तरफ देख रही हैं। मधुरिमा को लगा, शायद उसे भ्रम हुआ हो।

युवक बेहद आकर्षक था। ऊँचा-पूरा कद, सलीके से संवार बाल, साँचे में ढला गठा हुआ जिस्म। बड़ी-बड़ी खोजती सी आंखें। विमल स्मिटिंग के माडल-सा लगता था। हाँ, मधुरिमा ने इस बार देखा कुछ ध्यान से और सोचा, यह युवक इस प्रकार कई दिनों से क्या खोजता-सा लग रहा है? उनके घर में आकर्षण का ऐसा कोई केन्द्र तो है नहीं। लड़का-लड़की बड़े हैं, बाहर होस्टलों में पढ़ रहे हैं, घर में तो वे और उनके पति ही रहते हैं। जाहिर है, दोनों में ऐसी कोई बात नहीं, जो एक ऊँचे पूरे युवक में खोजबोन की रुचि जगाए।

तब उन्होंने जाली के बंद दरवाज़े के पीछे आड़ में छिपकर देखा। कहीं यह उनके मन का वहम ही न हो। वह यों ही गलत-फहमियाँ पालने लगी हो। हो सकता है वह युवक दायें-बायें किसी लड़की-वड़की के चक्कर में खोजती नज़रें घुमा रहा हो। लेकिन नहीं, वह तो बराबर उसी तरफ धूरे जा रहा था।

रात मधुरिमा को बड़ा विचित्र सा अहसास हुआ। उम्र के चालीस पार करते भी कोई तीस-बत्तीस साल का युवक उसमें रुचि ले, ऐसा सोच कभी उसके दिमाग में घुस भी नहीं सकता था। आलतू-फालतू किस्म की गलतफहमियाँ पालने का शौक उसे

नहीं है। चेहरे-मोहरे से ठीक-ठाक होने के बावजूद उसने अपने को कभी लवगलता नहीं समझा। जिस्म को यों भी गैरज़रूरी अहमियत उसने कभी नहीं दी। बस, जैसी वह थी, थी! न कम अच्छी, न ज्यादा बुरी। अपनी तमाम खूबियों-खामियों के साथ, एक व्यक्ति!

लेकिन यह युवक?

क्या खोज रहा था वह?

हो न हो, ज़रूर वह उन ढेर

सारे प्रशंसकों में से एक होगा, जो उसकी वायलिन के दीवाने हैं। उसके मन में एक ठोस तर्क गढ़ा।

मधुरिमा जी अपने शौक में व्यस्त महिला हैं। पत्रकारिता में भी थोड़ी रुचि है वह मानकर चली है कि बच्चे बड़े होने के बाद हरेक व्यक्ति को जो अकेलापन भुगतना पड़ता है, कोई हॉबी उस अकेलेपन को यदि भरती नहीं, तो भी उसे सहने योग्य अवश्य बनाती है, घर में नौकर है, पर वह खाना अपने हाथ से ही बनाती है। कुछ समय उसमें भी निकलता है।

यों भी दिन भर आप वायलिन लेकर तो नहीं बैठ सकते। मौके-बेमौके और पास-पड़ोस का ध्यान तो रखना ही पड़ता है। कभी-कभार कुछ लिख-पढ़ भी लेती है। इस तरह समय ठीक-ठाक कट जाता है। सहेलियों-पड़ोसियों के साथ बालकनी पर टंग कर घंटों गप्पे लगाना उन्हें नहीं मुहाता। कुछ पारिवारिक मित्र हैं, उनके यहां वह पति के साथ ही जाना पसंद करती है। पति का अपना व्यवसाय है, साँचे उमी में व्यस्त और त्रस्त दोनों रहते हैं। पर मधुरिमा जी अपने ऊबने का मौका नहीं देतीं, यह उनकी विशेषता है, जिस पर उन्हें गर्व है और पड़ोसियों को ईर्ष्या भरी शिकायतें।

अब जो है सो ठीक चल रहा था लेकिन यह पड़ोस का युवक? अचानक ही चलते-फिरते मधुरिमा की रुचि इस व्यक्ति के बारे में अधिक जानकारी के लिए जागी है। आखिर चाहता क्या है? शादीशुदा है या क्वारा? घर में छाटे-छाटे दा-तीन बच्चे तो नज़र आते हैं, कौन किसका होगा? भाई भी तो कई हैं। पत्नी कौन हो सकती है? वह गोरी वाली, जो सुबह दूध के क्यू में खड़ी मिलती है या वह कन्ध तक बाल काटे हुए सांवली-सी, जो शाम को छोटे बच्चों को फार्म में घुमाने ले जाती है?

चलो, हटो, जो भी हो—अपने को क्या है। ऊँह! अपनी ही परेशानियाँ क्या कम हैं जो दूसरों की माल लेकर उनमें इजाज़ा करा।



लेखिका

कुछ दिन मधुरिमा ने हठपूर्वक पड़ोस के घर से नज़रें और रुचि दोनों हटा लीं।

दीपावली पर छुट्टियों में बच्चे आये तो मधुरिमा अपने भरे-पूरे संसार में लौट आई। बाल-बच्चों की चहक से घिरी उसे लगा कि वह घने पत्तों वाले चिनार के साये में सुस्ता रही है। उसने प्रोग्राम बनाये। आज सोना लेक जायेंगे, कल सूरजकुंड का प्रोग्राम बनेगा। बड़कल में बोटिंग करेंगे...बेचारे बच्चे घर आते ही कितना है ?

सप्ताह भर भरी व्यस्तताओं में निकल गया। मधुरिमा के पति मनोज में भी सहज भराव नज़र आया। अरसे बाद उसे बच्चों के साथ निकलते देख मधुरिमा ने सोचा, सचमुच, घर में अकेले पत्नी के साथ कितने दिन चहका जा सकता है ? दिमाग में रक्तचाप बढ़ाने वाली हज़ारों बातें भरे, किस मीठे संवाद की गुंजाइश रह सकती है ? बच्चे तो माता-पिता के बीच पुल का काम सदियों से करते आये हैं।

लेकिन सप्ताह भर कितना लंबा खिंच सकता है। समय तो अपनी अवरोध गति से ही चलेगा न ?

जाते-जाते अनु का अटैची संभालते मधुरिमा ने बालकनी से गुज़रते स्कूटर की आवाज़ से खिंच कर बाहर देखा। ओ, वही ! मधुरिमा की दृष्टि घूटता से चार-छः पल उसके चेहरे पर रुकी। गोया कहना चाहती हो, “देखो मेरा बेटा है यह। कद-काठी में, कुछ ही वर्षों में तुम जैसा निकलेगा। नन्हीं-नन्हीं दाढ़ी-मूँछ भी उगने लगी हैं।” मातृत्व के माथा ऊंचा करने वाले अहसास के साथ उसने अनु के कंधे पर हाथ रखा। प्रकारांतर से—युवक को हिदायत दी, “अपनी हड्डें पहचानो और समझ लो भोलेशाह, कि हमारी उम्र और प्रतिष्ठा इस नटखट ताक-झांक की नहीं, कुछ मान-सम्मान की अधिकारिणी है।”

अनु के साथ मिन्नी भी चली गई। वातावरण में आई चहक और महक को साथ लेकर।

बच्चे आकर चले जाते हैं तो निरन्तर अभ्यास करके एकांत के साथ किए समझौते बिखरने लगते हैं मन तब दुहरे अकेलेपन में भटकने लगता है जैसे सोये ताल को कोई कंकड़ फेंक-कर बेबैन लहरें उठाकर जगा दे। फिर समय लगता है दुबारा उम शांत मनः स्थिति में लौटने तक।

मधुरिमा को लगा वह जिस घने सायेदार वृक्ष में सुस्ता रही थी, अचानक उसकी जगह एक नंगे सूखे टूँठ ने ले ली है जिसकी पत्रविहीन शाखों से उतरकर जून की तपती दुपहरी तन-मन को झुलसाने लगी है।

मनोज कहते हैं कि अकेलेपन की क्या बात है ? यह तो तुम्हारी मनः-स्थिति है। जिसे तुम जिस रूप में ढालो, ढल जाएगी। तुम अपने सोच को जो दिशा चाहो दे सकती हो,

मन भी उसी के अनुरूप काम करेगा। अकेलापन देखो तो कहां नहीं है ? फर्क इतना है कि कोई बूढ़ा होकर अकेला हो जाता है, कोई थोड़ा पहले। इस सच्चाई को मन से स्वीकारो तो तकलीफ नहीं होती है। फिर तुम्हारी तो कई हाँबियां हैं, तुम्हारे साथ ऐसी समस्या तो नहीं होनी चाहिए।

नहीं होनी चाहिए, पर होती है कभी-कभी। इस होने न होने का तर्क कभी समझा नहीं जाता। अकेलापन ! मानसिक-प्रक्रिया विशेष। मनोज ने कह दिया, मन को जिस दिशा में चाहो मोड़ दो। करने को तो कितना कुछ है। तुम्हारी समस्याओं का पहला कारण और आखिरी समाधान तुम्हारा सोच है, कह कर मनोज मुक्त हो जाता है, पर मधुरिमा इतनी सहजता से मुक्त नहीं हो पाती। मनोज कहता है, “तुम बंध जाती हो, गैर-ज़रूरी बंधनों में। हर व्यक्ति को राय दो, पर उसके साथ अनावश्यक भावुकता मत जोड़ो। यहीं पर तुम्हारी समस्याएं शुरू हो जाती हैं। थोड़ा ‘साइंटिफिक वे’ में सोचा करो। बीसवीं सदी का सोच बड़ा ‘क्लीयर कट’ वैज्ञानिक सोच है—जो सामने है, वही है, उससे बाहर कुछ भी नहीं..।

यह सब पहले सुनी हुई बातें मधुरिमा युवक के संदर्भ में सोचने लगी है। तब नहीं। उस वक्त तो बिल्कुल नहीं। लेकिन कब कोई चीज़ बिना कारण, बिना चेतावनी दिए तुम्हारे भीतर जगह पाती है, इसका आभास, अवसर उस घटना के घटने के बाद होता है। आश्चर्य, पर शायद स्वाभाविक भी, क्योंकि कारण कितना नामालूम हो, होता ज़रूरी है, कहीं मन की भीतरी परतों में दबा-ढका।

यही बात मधुरिमा ने उस युवक से बाद में पूछी थी। उत्तर में उसने कहा था, ‘गाँड नोज !’

तब नहीं, तब तो पहले अविश्वास, फिर आश्चर्य और उसके बाद धीरे-धीरे कोई खाली कोना भरे जाने की-सी अनु-भूति हुई। मन के भीतर एक तीव्र संवेदन जन्म लेने लगा था कि वह फिर से चहकती आवाज़ों से घिरने लगी है। अमलतास की पीले फूलों वाली शाखों तले सुस्ताने लगी है। दिन के ऊँघते क्षणों में भी दो भावपूर्ण खोजती-सी आँखें उसे घेरे रहतीं, हल्की मुस्कराहट भरा अभिवादन करती हुई, ‘हलो...हलो...कैसे हो ?’

‘ठीक हूँ, बिल्कुल। खूब खुश। इसमें पूछने की बात ही क्या है ? फिर तुम कौन हो ? मेरी खुशी-नाखुशी से तुम्हारा क्या संबंध ?’

मधुरिमा बंद कमरे की दरारों से आती सदाबों पर मीठा-मीठा नाराज़ होने लगती। बड़ा बेतुका-सा आदमी है यह। भला क्या मतलब है बिना मतलब की पूछताछ से ? गैरज़रूरी सवालात से ? जिस गांव न जाना हो, उसकी गेल पूछने से मतलब ?

आखें बंद करके करवट बदल वह दुपहर की आधेक घंटे की नींद लेने को तैयार हो जाती। लेकिन कहां ?

‘थप...थप...थप...’ ज्यों दूर से कोई चला आ रहा हो। ‘ट्रिन...ट्रिन... ट्रिनन...,’ ज्यों टेलीफोन की घंटी बज उठी हो। ‘पी...पी...पी...पिपी...,’ ज्यों किसी स्कूटर का हार्न बज रहा हो। कान तकिये पर दबा कर वह आवाजें बंद कर देती। लो ! यह बैठे-बैठे और रोग लगा बैठी। सालहसाला किशोरियों की-सी बेचैनी, हर आहट पर चौंकना, घत !

पहले-पहले शीशे के सामने खड़ी होकर, वह अपनी मनो-दशा पर आप ही हंस पड़ती, ‘कमाल है मधु ! तेरी उम्र क्या रिप वान विकल की तरह एक रात सोकर जागने पर ही वर्ष दर वर्ष लांघ गई ? यों ही तुम बीस से चालीस तक पहुंच गई ? उम्र के हर दौर में, सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़ते, तुम एक लंबे तयशुदा रास्ते से गुजरती नहीं ? उस रास्ते पर तेरे साथ कई दोस्त, नाते, रिश्तेदार तेरे साथ नहीं चले ? मिले, बिछुड़े, कटे और जुड़े नहीं। हथेलियों के स्पर्श भर से, अपनी घड़कनों की हरकतों से खुद ही चौंकने वाली उम्र से गुजरते तुम शांत अडोल स्थिति तक नहीं आने लगी जहां शरीर के साथ किए गए खिल-वाड़ भिगोते भले हों, डुबोते तो बहुत ही कम हैं ?

फिर एकदम पीछे लौटना ? इसकी कोई तुक ? कोई वजह ?

नहीं, मधुरिमा खिड़कियां-दरवाजे उड़का कर अपने को कमरे में बंद न कर सकी। बड़ों के कहे मुताबिक पल-पलकें झुका कर रहने के बाद भी ढीठ नजरो से सामना होता रहा। मन की इस अनोखी भावदशा को समझना जरूरी था। इसकी तहकीकात जरूरी थी आखें मूंदने से तो स्थितियां बदलती नहीं। भीतर जिज्ञासा सिर उठाये प्रश्न पर प्रश्न दागती जाएगी, ऐसी बेहूदा बेसब्री पहले तो कभी महसूस नहीं हुई थी। बच्चों से घिरे, उनकी फरमाइशों से ही कहां छुट्टी मिलती थी कि उनसे हटकर कुछ सोचती, लेकिन अकेली होते ही भीतरी तहखानों से कैसे साक्षात्कार हो गया ?

मधुरिमा ने अपने को दोषी समझा। जरूर उसके भीतर कहीं कोई खाली काना है। लेकिन गुस्सा उसे इस अजनबी युवक पर भी कम न आया जिसकी एक मुस्कराहट पर कम-सिन सुंदरियां निछावर हो सकती थीं, उसके दिमाग का पुर्जा इतना ढीला कैसे हो गया कि उम्र का फर्क भूल कर उसके पीछे हाथ धोकर पड़ गया ?

सोचा डांटे, “क्यों जी, तुम्हें यों दीवानों की तरह ताकने के सिवा कोई बेहतर काम नहीं आता ? इधर कोई तमाशा तो नहीं हो रहा ?” तरेर भरी नजरों से एक बार मधुरिमा ने जो देखा तो युवक महीन-महीन मुस्कराया। लो। सरकार तो दोस्ती का हाथ बढ़ा रहे हैं।

अरे भई, हम लोग विशुद्ध भारतीय हैं। स्त्री-पुरुष की मित्रता को सहज रूप से स्वीकार करना हमारे लिए पारे को मुट्ठी में बंद करके सहजने जैसा कठिन काम है। फिर अपने यहां दोस्ती का कोई कारण चाहिए। तुम्हारे पास है कोई ठोस कारण ?

कारण जानने की जिज्ञासा थी और यह बचकाना ताक-भांक बंद करवाने की इच्छा। इसलिए मधुरिमा से जब सड़क पर सामना—हुआ तो उसने रू-ब-रू बात करना जरूरी समझा, “हल्लो, आपका शुभ नाम ?”

“मुझे सुरेश कहते हैं।” वह मुस्कराती आंखों से बड़े सहज भाव से बोला था।

“मैं आप से बात करना चाहती थी।”

नहीं, सीधे घर पर निमंत्रण देना ठीक नहीं होगा। यों मधुरिमा को बैसा करना ज्यादा स्वाभाविक लगता लेकिन सामने वाले के संस्कार जानना भी तो जरूरी होता है। कहीं खामखाह यह न समझ बैठे कि किसी मतलब से बुलाया है। इस उम्र के युवक यों भी हर गली-मोड़ के दोने-कुल्हड़ों में मुंह मारने को तैयार रहते हैं। सो मधुरिमा ने अपना फोन नंबर दिया, यद्यपि मन में संकोच भरे प्रश्न उभरते रहे, क्या बात करेगी ? कैसा लगेगा यह पूछना कि भई तुम इस तरह दीदे फाड़-फाड़ कर मेरी तरफ क्यों घूरा करते हो ? मेरी पड़ोसिनें अटकलें लगातीं, ईर्ष्या से जल कर राख हुई जा रही हैं...।

दस बजे से बारह बजे तक का समय दिया था। दस बज-कर दो मिनट पर फोन की घंटी बजी, “मैं सुरेश बोल रहा हूं...।”

“मेरा नाम मधुरिमा है...।”

“आप कुछ कहना चाहती थीं ?”

“मैं आपके बारे में कुछ जानना चाहती थी।”

आप क्या जानना चाहती थीं, क्यों जानना चाहती थी। यह सब बताना कितना बेहूदा लग रहा था पर मधुरिमा एक अपरिचित व्यक्ति से थप्पड़ की तरह यह सवाल रसीद न कर सकी कि भले आदमी, यों घूर-घूर कर मेरी तरफ क्यों ताका करते हो, अपना चेहरा कोई प्लेनेटेरियम तो नहीं है...।

मधुरिमा ने अपना परिचय दिया, रुचि बताई। इसलिए कि शायद वह कहे कि आपका वायलिन वादन सुना था, या आपका फलां लेख मैंने फलां मैगजीन में पढ़ा था। सुरेश ने ऐसा कुछ भी न कहा। अपना परिचय देते हुए वह बोला कि वह कस्टम अधिकारी है। संयुक्त परिवार में रहता है और अभी अकेला ही है। उम्र अठ्ठाईस के करीब है (यह उसने मधुरिमा के प्रश्न के उत्तर में बताया)।

मधुरिमा को धक्का लगा। उसे तो वह बत्तीस-तैंतीस का

लगा था। दरअसल उन दिनों सड़ियां थीं। वह कोट-पेंट पहनता था। स्कूटर पर, हेलमेट लगाने के अलावा आंखों पर चश्मा भी चढ़ाता था। शागुद इसी से उम्र कुछ ज्यादा दिखी हो। लेकिन बात करते वह अट्टाईस का ही लगा। बल्कि पूर्ण वयस्क होने पर भी, बातों में अनुभवहीनता का कच्चापन कभी-कभी झलक आता था।

अब ? मधुरिमा ने अपने परिचय के साथ पति और बच्चों का भी परिचय दिया। स्त्रियों की उम्र संबंधी दुर्बलता को नज़रअंदाज करते, अपनी उम्र भी बिना पूछे बता दी। यानी कि अपनी ओर से, घुमा-फिराकर ही सही... उसने बात साफ कर दी कि तुम्हारे और मेरे बीच बहुत ज्यादा फासला है। उम्र, रुचि वगैरह सभी का। कहीं कोई रुचि-रुझान मिले तो दोस्ती का आधार बने। नहीं, इधर ऐसी कोई गुंजाइश नहीं।

मधुरिमा ने फोन नम्बर नहीं मांगा। अपनी तरफ से उसने बातों का सिलसिला शुरूआत के साथ ही समाप्त कर डाला।

लेकिन सिलसिला बंद कहां हुआ ? बरामदे में आते-जाते सुरेश की नज़रों से सामना होता रहा। ढीठता की हदें छूती उसकी दोस्ताना मुस्कराहट को नज़रअंदाज करने की तमाम कोशिशें व्यर्थ हो गईं। फोन भी दूसरे-तीसरे दिन—आते रहे।

यानी कि संभ्रांत ढंग से दोस्ती की शुरूआत हो गई, मधुरिमा की अनुत्सुकता के बावजूद।

बातों-बातों में मधुरिमा ने एक दिन कहा, “मेरी मानो तो कोई अच्छी-सी लड़की ढूंढ़कर शादी कर लो। तुम्हें एक साथी की ज़रूरत है।”

सुरेश हंस पड़ा।

“या जीवन भर ब्रह्मचारी रहने का इरादा है ?” उसने सुरेश के मन को टटोला।

“नहीं, आई वांट डेट आलसो। बट आई विल बी आलवेज फ्रेंड्स विद यू।”

मधुरिमा को सुरेश की साफ़गोई पसंद आ गई। उसने मन को समझाया, ठीक है, दोस्ती कोई अपराध तो नहीं ?

पता चला कि घर में सुरेश के लिए माता-पिता लड़की देख रहे हैं। दो बहनें हैं छोटी। उनके लिए भी वर ढूंढ़ाई हो रही है। ऐसी बातों में वक्त तो लगता ही है। और फिर वह जल्द-बाजी में कोई काम नहीं करना चाहता।

“अच्छा यह तो बताओ कि अड़ोस-पड़ोस में कई स्त्री-पुरुष होने के बावजूद तुम्हारी रुचि मुझमें कैसे जगी ?” मधुरिमा कारण जानने को उत्सुक थी। लेकिन सुरेश तो शायद खुद भी जानता न था।

उसने दो शब्द कहे, “गाँड नोज़।”

“लो, काम तुम करो और जिम्मेदारी ऊपर वाले के सिर !”

“देखो, मुझे लगता है, या तो तुम बहुत ज्यादा सीधे हो या बहुत ज्यादा चालाक। सच बताओ तुम क्या हो ?” मधुरिमा ने कुछ चिढ़कर पूछा।

“आप खुद जान लेना।”

यानी हाथ भाड़ने वाली बात ?

“हूँ।” मधुरिमा कथाकार नहीं थी। हांती तो शायद पात्रों के चरित्र गढ़ते, विश्लेषित करते उसके आचरण की थाह भी पा लेती। पर ऐसा संभव नहीं था।

आगे दोस्ती का दायरा बढ़ता गया। मधुरिमा अकेलेपन की खोह से निकल कर ज्यों भरे संसार में आ गई। सुरेश के सामने दोस्ती की कोई हदें नहीं थीं। वह दकियानूसी विचारों से नफरत करता था। अपने काम को जिम्मेदारी से निभाता था। दूसरे के पचड़ों से दूर रहता था। उसका अपना फ्रेंड सर्कल था, अपने शौक थे। और वह अकेला था, अपने ढंग से जीना चाहता था।

लेकिन मधुरिमा एक जिम्मेदार पत्नी, मां, गृहिणी वगैरह-वगैरह थी। उसके भी अपने शौक थे, हॉबियां थीं, इस सबके बावजूद वह भी अकेलापन महसूस करती थी। लेकिन उसका सोच सुरेश से अलग था।

सुरेश की प्यास वह समझ सकती थी। कोई भी समझ सकता था। उसने ईमानदारी से स्वीकार किया था कि करीब चारों बरस पहले वह पहली बार एक लड़की से मिला था, पर वह उसकी दोस्त नहीं थी। उसे उसके बारे में कुछ भी मालूम नहीं। साल भर से तो वह किसी लड़की से मिला ही नहीं। दोस्त उसकी कोई नहीं है। दरअसल वह काम में इतना व्यस्त रहता है कि लड़कियों के साथ घूमने-फिरने का समय भी उसे नहीं है। और फिर वह ऐसे नाज़ुक स्टेज से गुज़र रहा है कि वह ‘इन्वाल्ड’ होना नहीं चाहता—

पता नहीं उसकी बात का कितना अंश सच था पर नौकरी उसकी ज़रूर कुछ टेढ़ी थी। कई बार वह रात को दो बजे घर लौटता, कभी सुबह पांच बजे। अक्सर गोदामों, स्टोरो पर छापे मारने पड़ते थे। उसे किसी भी समय बाँस के बुलाने पर घर से निकलना पड़ता था।

फिर भी यह सच है कि तमाम व्यस्तता के बाद भी सुरेश उम्र की ज़रूरत को पूरी शिद्दत के साथ महसूस करता था और जाहिर है कि कवल मीठी बातों और चेहमेगोइयों से गहरी कुछ ज़रूरतें होती हैं जो शिष्टता के रोड़ों को एक तरफ हटा कर पूरी होने के रास्ते तलाशती हैं।

मधुरिमा इस जगह पर आकर, संस्कारिता के तकाजों के अनुरूप, निर्ममता से अलग हो सकती थी। ज़रूर हो सकती थी अगर अकेलेपन के अहसास ने बुरी तरह से उसके वजूद को ढक न दिया होता। और अगर उसके चाहे या अनचाहे, उसने

अपने भीतर का खाली कोना शिद्दत से महसूस न किया होता। वह खाली जगह इतनी बेहूदी और तर्कों से परे थी कि कब हाथ बढ़ा कर उसने सुरेश को अपने भीतर समो लिया, मधुरिमा जान भी न सकी।

दोनों ने तर्क दिए, हम अच्छे दोस्त हैं। उससे आगे कुछ नहीं।

सुरेश ने कहा, हम एक-दूसरे को समझते हैं, दोस्ती के लिए, और क्या चाहिए? फिर हमारा कोई स्वार्थ भी नहीं।

स्वार्थ के बारे में मधुरिमा ने भी स्थूल ढंग से सोचा तब भी लगा स्वार्थ तो है। पर साथ ही उसकी प्रौढ़ बुद्धि ने तर्क दिया, वह स्वार्थ उनका नितांत निजी है, दूसरे के लिए हानि-लाभ से परे।

जो भी हो, मधुरिमा उस बीच उम्र के दस-बारह साल पीछे लौट आई। हर काम दुगुने उत्साह से होता रहा। कहां था अकेलापन। वह रग-रग पर हावी होकर निष्क्रिय कर देने वाला दानव, सुरेश के आगमन के साथ ही कहीं दूर के खाई-खंदको में गुम हो गया था।

लेकिन तभी एक सुबह मधुरिमा ने आश्चर्य से जाना कि वह रातों-रात एक दशक लांघ गई है। पलक झपकते उम्र में दसियों सालों की बढ़ोतरी हो गई है। आश्चर्य! मन के भीतर पलते गुप्त रहस्यों के परत-दर-परत खुलते मधुरिमा ने कई साल आगे छलांग लगाई। कैसे क्या हुआ? कारण? वे जाने-अनजाने 'इन्वाल्ड' तो नहीं होने लगे थे? शायद सुरेश जानता हो, क्योंकि सुरेश ने एकदम फोन करना बंद कर दिया। मधुरिमा ने तो फोन नंबर लिया भी नहीं था, नहीं तो शायद वह ही फोन करके कारण पूछ लेती।

अचानक संबंधों का महीन मकड़-जाल अदेखी आंखों के वेग से टूट कर लटक आया और मधुरिमा उन कमजोर धागों को विस्मय से देखती रही। टूटे जाल को देख कर विश्वास करना कठिन था कि इन बेहद नाजुक तंतुओं से बने जाल पर मकड़ी स्थिरता का भरोसा कर सकती थी?

यों यह होना ही था। मधुरिमा ने बीसवीं सदी के सोच के मुताबिक तर्क गढ़े, आखिर एक अट्ठाइस-तीस साल का युवक चालीस-वर्षीय महिला के साथ कब तक दोस्ती का अनुबंध निभा सकता है!

—लेकिन क्या दोस्ती में भी उम्र का हिसाब रखा जाता है?" भीतर ऊल-जलूल विवाद खड़ा हुआ।

—दोस्ती? लेकिन यह तो अकेलेपन को भरने की समस्या में उपजी दोस्ती थी। विमल शूटिंग के डैशिंग, हैंडसम माडल की दोस्ती थी, जिस पर कम से कम मधुरिमा जैसी परिपक्व महिला को विश्वास नहीं करना चाहिए था।

उस दिन शीशे में पहले से भी ज्यादा उदास, अकेली आकृति

को देख कर मधुरिमा को क्रोध आया। मन में क्षोभ और ग्लानि से गला रुंध गया और आंखों से गरम लपटें निकलने लगीं। क्योंकि उसने सामने वाली पीली कोठी की बालकनी पर खड़ी युवती की बेचैन हरकतों को देखा और कारण समझा। उसकी नजर अचानक सुरेश के घर की तरफ गई। उसने मधुरिमा की तरफ खुलने वाली खिड़की पटाक्षेप की तरह एकदम पर्दा खींच दिया। यों कई दिनों से पहले भी परदा खिंचा रहता था। वह समझती रही कि शायद व्यस्तता के कारण वह समय पर घर नहीं आ पा रहा। एकाध बार देखा भी तो जैसे किसी अजनबी आदमी को देखा। अब कारण समझते ही उसे धक्का लगा कि संबंधों का यह घटिया मज्जाक उसके साथ हो सकता है?

लेकिन उधर नये अनुबंध पर हस्ताक्षर हो गए थे। धक्के के बावजूद यह सच था कि सुरेश के लिए दोस्ती निहायत भोला शब्द था जिसका इस्तेमाल सुविधानुसार किया जा सकता था। और जिसकी कोई तयशुदा उम्र नहीं थी। दरअसल उन दिनों वह स्कूटर पिछले दरवाजे से निकालता था, सो आते-जाते मधुरिमा पर नजर पड़ती थी। कुछेक दिन पहले, पीछे सामान भर जाने से वह स्कूटर आगे से निकालने लगा था। तभी उसकी नजर पीली कोठी की बालकनी पर पड़ी होगी।

खड़ी-खड़ी मधुरिमा ज्यों बुत बन गई। मन पर खरोंच की तरह तकलीफदेह स्थितियों का इतना सरलीकृत विश्लेषण अपने गले ही नहीं उतरा। सुरेश के निहायत ईमानदार शब्द याद आ गए। "आई डोंट वांट टु गेट इन्वाल्ड..." सुरेश का भोला चेहरा जेहन में कौंध गया, "आई विल भी आलवेज फ्रेंड्स विद यू..."

सुरेश ने उसे चेताया तो था, तो क्या वही समझने में गलती कर गई?

सभी आवाजों के ऊपर मनोज की परिपक्व वजनदार आवाज गूंज उठी, "अकेलापन? मानसिक प्रक्रिया है यह... दरअसल तुम चीजों को जरूरत से ज्यादा महत्व देती हो। दूसरे को राय दो, पर उसके साथ बंध क्यों जाती हो? मधु, यह बीसवीं सदी का सोच है..."

दोस्ती, संबंध, संबंधों की अर्थवत्ता! नहीं, बहुत गहरे जाने की जरूरत नहीं, जो सामने है, वही सच है। उसके परे आकाश है, खाली, खोखला आकाश!

मधुरिमा को तीखी कचोट के साथ नया ही बोध हुआ कि अकेलापन कम करने के लिए किताबों के अलावा, पेड़-पौधों, चिड़ी-चिराई, और प्लास्टर-पुती दीवारों से बातें की जा सकती हैं, शीशे में मुंह बना-बना कर हंसा या रोया जा सकता है। लेकिन, नौवें दशक की दोस्ती पर एतबार नहीं किया जा सकता। □

गांव की पुकार

ऋता शुक्ल

ऊँचे-ऊँचे सांवले पहाड़ों से घिरी

इस ऊबड़-खाबड़ जमीन पर चलते हुए

पैरों में किसी एहसास का कांटा चुभ जाता है—

तब...ऐ मेरे गांव

मैं तुम्हें याद करती हूँ।

चारों तरफ से हवा के गर्म थपेड़े भेलती हुई

जब कभी घबड़ा जाती हूँ

मेरे गांव,

मैं तुम्हें अपने पास चाहती हूँ।

...मेरे बाबा की बहुत बड़ी अमराई है

फगुनाहट की मीठी छुअन से भूमती

हरी-हरी पत्तियों के बीच बैठी

मदमाती कोयल वहां गाती होगी।

ऐ शहर, मुझे मोहलत दो

कि मैं दो क्षण रुक कर वह गीत सुन सकूँ।

पूरुब बनिजिया पर निकले

मेरे गंवई भाई-बन्धों की याद लेकर

सावन की रिमझिम फुहार जब बरसती होगी

गांव की अंगनाई में बैठी हर भावज का

हियरा मुलगता हांगा

आंखें भर आती होंगीं।

ऐ मेरी जिन्दगी,

तुम मुझे इजाजत दो कि...

कजरी और बारहमासे में पिघलते

अपनी भावजों के दर्द को

मैं अपने सीने में उतार सकूँ।

अंधेरी रात को नीम खामोशी को चीरती हुई

जब कोई नहीं रुलाई,

रुक-रुक कर फूटती होगी

दीवट पर जलते हुए दिये को उठा कर

मेरे गांव की दगड़िन तब देखती होगी—

पूत नहीं धिया ऽ।

मटमैली कोठरी की कच्ची दीवारें

अम्मा के दुःख से लरजती होंगी—

धिया...धिया...धिया ऽऽ।

धिवकार है, इस कोख को जिसने बेटी जनी।

कांसे की थाली बजाने को उद्धत हाथ

आंचल में सिमट-सिमट जाते होंगे।

सासुओं की, ननदों की आंखें कपाल पर

अब भी चढ़ जाती होंगी।

मेरी अस्मिता मुझे चुनौती देती है—

उठो, अपने गांव की ओर जाओ,

हर धिया को सिया की मर्यादा दिलाओ...

तुम्हें अपनी मां की कोख की कसम है।

तो ऐ शहर,

तुम्हारी इन ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर

चलते हुए,

तुम्हारे हवा-पानी में जीते हुए

अक्सर मुझे लगता है

कि मैंने कोई बहुत बड़ा गुनाह किया है।

मेरे गांव से जब-तब कुछ संदेश आते रहते हैं—

मेरी एक अभागिन बहन आग में जल कर मर गई

सातवीं बेटी थी—दहेज न मिलने के ताने नहीं भेल सकी।

मेरी एक भावज की सतमासी कोख उजड़ गई

अब वह फिर कभी मां नहीं बन सकती—

क्योंकि उसकी पीठ पर

उसके स्वामी ने आसुरी प्रहार किया था।

जानते हो शहर..., किस लिए ?

महज इस लिए कि वह दलान की चौखट पर क्यों खड़ी थी ?

कि उसकी मीठी हंसी पर रीझ कर

गली में जाते हुए ग्वाले के बेटे ने

विरहा का आलाप क्यों लिया था ?

तुम हंस रहे हो शहर...?

हंस लो...

बेशक इसे मेरे गांव की दकियानूसी समझ कर हंस लो।

लेकिन तुम नहीं जानते शहर कि

क्लबों और कहवा घरों की बेबाक खिलखिलाहटों में

कैबरे और पाप गीतों के नंगे शोर में

डूबी तुम्हारी आत्मा के पास

ऐसा कोई भी मापक यंत्र नहीं

जो मेरे गांव की निर्दोष हंसी का भोलापन थाह सके।

थिगलों, पैबन्धों से जकड़ी उस जिन्दगी की

ईमानदार आब को पहचान सके।

इतनी गहराई तुममें नहीं है।

इसीलिए तो अनुनय करती हूँ—

ऐ शहर, रोजी-रोटी के शिकंजे से

मुझे थोड़ी देर के लिए ही सही

मुक्त करो।

या फिर चलो,

तुम भी मेरे साथ चलो,
सोचो नहीं।

मेरे गांव की दरकी हुई छाती में
अब भी पटुनाई का जोश होगा।

भरे-पूरे चांद जैसा गुडहा बताशा
रख कर हथेली पर

पीतल में चमचमाते लोटे में
जल दे कर
कच्ची जमीन पर बांहों में बांध कर
अपने दोनों घुटने
गांव मुग्ध भाव से
बैठेगा सामने।

और जब तुम चलोगे
वह तुम्हें टा...टा...नहीं कहेगा
राम ..राम कह कर बार-बार निहुरेगा—
फिर आना भइया,
बिसरा मत देना हमें
मुग्ध लेते रहना।

कहो शहर, ऐसी विदाई पर
आंख भर आए ती कौन-सा अचरज होगा ?
घूंघट की आड़ में टिकुली की दमक को सहेजती—
भावजें कहेंगी—फिर आना।
और मेरे बाबा को घनी बंसवारी में,
बैठी कोयल कूकेगी—कुड़-कुड़...
कहां चली...?
फिर आना।

शहर,
सुदूर गांव से चल कर आई हवा नेवता दे रही है—
चलो, गांव की ओर चलो।
तुम्हें तुम्हारे जन्म की कसम है।
तो शहर, क्या कहते हो...?
क्या इस कसम को भी नहीं निभाऊं ?
ऊबते हो,
नाक-भौं सिकोड़ते हो...?
दिमाग पर जोर डालो,
याद करो...,
तुम्हारी भी नाल किसी गांव के,
किसी कच्चे घर के पिछवाड़े में
दबी तो नहीं रह गई ?

“राज कुटीर” मोराबादी, रांची,

क्या होगा

—भारत यायावर

मूंगफली ठेले पर
जीवन की

एक गहरी सच्चाई है/जिसे लेकर
चास की सड़कों को चासते हैं इदरीस/मियां
मूंगफली के छिलकों की
बिखरी हुई ज़िदगी को
अपने में समेटे/कितने घरों के सामने
रुकते हैं/बांटते हैं जीवन की खुशियां

टूटे हुए एक हाथ
के दर्द को आंखों से भलकाते
कितना कुछ कह जाते हैं इदरीस मियां
ठेले पर दुखों की एक बड़ी दुनिया लिए
दूसरे हाथ से ठेलते हुए ठेले को
बढ़ जाते हैं इदरीस मियां

ठेले पर/मूंगफली के पांच सेर
उनकी झोपड़ी का ‘दीया’ है
उनके घर के चूल्हे की आग
उनके बच्चों की आंखों की चमक
रोटी की भाप
पत्नी की धूल जमी साड़ी का साबुन

मूंगफली ठेले पर/जीवन की
एक गहरी सच्चाई है/जिसे लेकर
चास की सड़कों को चासते हैं इदरीस मियां
बिना यह जाने/कि कल क्या होगा/क्या होगा कल
जब दूसरा हाथ भी टूट जायेगा
जीवन की इस लड़ाई में
छिन जायेगी आंखों की रोशनी

कल आये थे इदरीस मियां
पहले भी आते रहे हैं
आज भी आयेंगे
और कल भी आयेंगे, परसों भी
पर मैं सोचता हू
जब नहीं आयेंगे इदरीस मियां
क्या होगा क्या होगा
क्या भोपाल की तरह/मेरे चारों ओर
जहरीली गैस नहीं भर जायेगी
क्या रह जाऊंगा मैं
एक दिन जब नहीं आयेंगे इदरीस मियां
क्या होगा, क्या होगा उस दिन।

—कदमा, हजारीबाग (बिहार)

कालदेवल की अंतिम यात्रा

□ सरस्वती आराधना

हर प्रभात एक पुनर्जन्म है
सत्य की खोज के लिए
सत्य में समागम के लिए ।
वह प्रभात कालदेवल के लिए भी
लगा एक अलौकिक प्रभात
जैसे प्रभात का आ गया हो प्रभात,
शुभ का शुभ,
शिव का शिव,
जब आकाश एक उत्सव हो गया था
देव-देवियां शिशु हो चले थे
सूर्य-चन्द्र बने रहे दर्शनार्थी, अभ्यर्थी,
और कालदेवल की जिज्ञासा का
मिला एक उत्तर—
आ गया धरा पर
चिर प्रतीक्षित, चिर अभिप्सित
एक अभिनव, एक अद्भुत सत्यार्थी
दर्शन करूंगा,
जीवन भरूंगा,
सोचकर चल पड़े वे कालदेवल,
स्वयं ही जो प्रबुद्ध थे, विशुद्ध थे,
विज्ञ थे, धर्मज्ञ थे ।
महामाया ने उतारी उनकी आरती
शुद्धोदन ने बिछायी नयनों की पालकी-
नवजात शिशु को,
शिशु राजकुमार को,
अभिषिक्त करें अपने आशीर्वचन से,
अपने पाणि-तल से, अपने नयन से—
काल की यह कल्पना है
कालदेवल बाचें,
माता-पिता की सर्जना है
उनका स्नेह अविरल नाचे ।
परन्तु कालदेवल के नयन थे
नयन नहीं; वे उमड़ते अश्रु की
धारा थे बह रहे
महामाया और शुद्धोदन की समझ में
आया नहीं वे जो थे कह रहे ।
कालदेवल ने सम्भाला
पहले अपने आप को
और बोलने के पहले
आश्वस्त किया

प्रश्न, शंका, भय, से
विह्वल आत्माओं को ।
— नहीं, भय नहीं है
नवजात शिशु के जीवन का ।
— नहीं, भय नहीं है
किसी अमंगल का, अशुभ का, अशिव का ।
नहीं, ऐसा कुछ नहीं ।
— यह शिशु सदियों की
प्रतिक्षा का वरदान है ।
— यह शिशु कोटि-कोटि
तपों का, तपस्या का अभिमान है ।
— यह शिशु दर्शन का,
धर्म का, आध्यात्म का,
एक नूतन, एक अभिनव विहान है ।
— यह शिशु वर्तमान का,
भविष्य का, एक मंगल गान है ।
यह शिशु हार का, जीत का,
भेद, गुण, रूप, आदि
समझने का आख्यान है ।
— यह शिशु जीवन का, मरण का,
बतलाने वाला वास्तविक अर्थ है,
मूल्य है, जिसमें ही सबका कल्याण है ।
हां, महामाया,
हां, शुद्धोदन,
तुम धन्य हो,
हम धन्य हैं ।
यह शिशु कालजयी द्रष्टा होगा
यह शिशु नवधर्म स्रष्टा होगा ।
परन्तु है मेरे भाग्य में नहीं
जग का भाग्योदय देखना,
अपना भाग्योदय देखना ।
मेरी यात्रा का यह अंतिम चरण है
मेरे लिए नहीं यह
नये सूर्य का नवकिरण है ।
अश्रु इसलिए थे अतिथि मेरे ।
यह शिशु जग का होगा
नया शास्ता
दिखलायेगा देश को, विदेश को,
नया रास्ता ।

उसके बहुत पूर्व
बहुत दूर
निकल जाऊंगा मैं
लिए अपने साथ
मंगलमय आनन
का मनोहारी मंगलकारी रूप
जग के वर्तमान को, भविष्य को
आश्वस्त करने वाला विश्वास एक । □

डी-1/32, सत्य मार्ग, चाणक्यपुरी,
नई दिल्ली-110021

विडम्बना

— रमेशचंद्र पंत

नहीं जानता
कहां खो गई है
वह/एकलव्य की-सी निष्ठा
ध्रुव का अटल विश्वास
निरंतर
लोगों के बीच/खाइयां
चौड़ी
और चौड़ी होती जा रही हैं
दिशाओं में
एक अजीब-सा शोर है
न कुछ
सुनाई देता है
न दिखाई
अंधेरा
धुंध-कुहासों के मार्गिद
कुछ
और भी ज्यादा गहरा गया है
कैसी विडम्बना है ।
लोग
जुलूसों की शक्ति में
बेहद उत्तेजित हैं
और/रोशनी
उन्हीं के घरों में कंद
दम तोड़ रही है ।

फार्मोसी विभाग, गवर्नमेंट पॉलीटेक्निक,
द्वाराहाट, अल्मोड़ा, उ. प्र.-263653

टी. एस. इलियट की कविता में भारतीय तत्व

□ डा. स्वर्ण प्रभात



टी. एस. इलियट

आधुनिक हिंदी कविता और आलोचना पर टी. एस. इलियट की कविता और आलोचना का प्रभाव निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है। हिंदी के आलोचकों ने यह मान लिया है कि बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो प्रयोगवादी धारा जन्मी वह मूलतः इलियट के काव्य-सिद्धांतों से प्रेरित रही थी। अज्ञेय और गिरिजा कुमार माथुर—इन दोनों कवियों पर तो इलियट का प्रभाव एकदम प्रत्यक्ष ही नज़र आता है।

लेकिन भारतीय चिंतनधारा और काव्य-सिद्धांत ने आधुनिक यूरोपीय साहित्य के निर्माण में जो भूमिका निभाई है वह पश्चिमी आलोचकों द्वारा दबे मुंह से स्वीकारी जाती रही है। सबसे दुर्भाग्यपूर्ण तो यह है कि हमारे भारतीय कवि और आलोचक स्वयं उससे अनभिज्ञ हैं। अगर उन्होंने भारतीय चिंतन दृष्टि के आधुनिक पश्चिमी साहित्य पर बड़े व्यापक प्रभाव को समझा होता तो वे आधुनिकता या आधुनिकीकरण की पृष्ठ-भूमि में क्रियाशील तत्वों को ठीक तरह से पहचान पाते और इस सम्बन्ध में उभरी हीनग्रंथि से बच सके होते।

आधुनिक अंग्रेजी कविता के प्रथम कवि के रूप में इलियट को मान्यता मिली है। लेकिन इलियट की अपनी कविता और उनके समकालीन कवियों डब्ल्यू. बी. ईट्स, डी. एच. लॉरेंस, ए. ई.—इत्यादि की कविता में जो अंतर्निहित धार्मिक संवेदना है उसके निर्माण में भारतीय चिंतनधारा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वैसे आधुनिकता और धार्मिक संवेदना के योग को एक विरोधाभास के रूप में देखा जाता है। लेकिन सच तो यह है कि जिस सांस्कृतिक संकट ने आधुनिक अंग्रेजी कविता को जन्म दिया उसकी ठीक पहचान अंग्रेजी कवि और विचारक अपने स्वदेशी दार्शनिक चिंतन और परंपरा के माध्यम से नहीं कर सके थे। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संस्कृत वाङ्मय और उपनिषदों के अनुवाद ने पश्चिमी दार्शनिकों, विचारकों को यथार्थ के एक नए स्वरूप से परिचित कराया। मैक्समूलर और शॉपेनहॉवर ने इन्हें विशेष रूप से प्रचारित किया और उन्हीं के प्रयासों से यूरोपीय चिंतक भारतीय जीवन-दृष्टि की ओर आकृष्ट हुए।

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरांत मानवीय सम्यता के संरक्षण और संवर्द्धन की जो समस्या सामने आई उसको हल करने में पारंपरिक जीवन-दृष्टि असमर्थ रही। मानव की मूलभूत प्रकृति

सम्बन्धी विवाद को सुलभाने में डार्विन और फ्रायड दोनों ही असमर्थ रहे। इसके विपरीत जुंग और फ्रेजर ने मानव जीवन को समझने में काफी मदद की। **द वेस्टलैंड** की पाद-टिप्पणियों में इलियट ने उनके योगदान को स्वीकार किया। और इससे भी आगे बढ़कर अपने कवि-व्यक्तित्व के निर्माण को रेखांकित करते हुए **आप्टर स्ट्रेंज गॉड्स** में इलियट ने भारतीय जीवन-दृष्टि की श्रेष्ठता और आधुनिक स्थितियों के प्रति उसकी अनुकूलता को बड़े ही स्पष्ट स्वर में रेखांकित किया। वह पूरा वक्तव्य कई अर्थों में महत्वपूर्ण है। इलियट ने लिखा है—

चार्ल्स लैमेन के निर्देशन में दो वर्षों तक संस्कृत के अध्ययन और जेम्स ऊड्स के तत्वावधान में पातंजलि के दार्शनिक सूत्रों के मनन ने मुझे ज्ञान के एक रहस्यमय आलोक से आवेष्टित कर दिया। बहुत प्रयत्न करके मुझे ग्रीक काल से लेकर अब तक के यूरोपीय दर्शन के प्रश्नों और सिद्धांतों को भूलना पड़ा और मुझे लगा कि भारतीय दार्शनिकों के प्रतिपाद्य के सामने ये यूरोपीय दार्शनिक महज स्कूली छात्र हैं। अपना यूरोपीय दर्शनशास्त्र का ज्ञान मुझे एक अवरोध की तरह प्रतीत हुआ।

इसी से मिलता जुलता हुआ एक वक्तव्य लॉरेंस डोल ने अपनी पुस्तिका **ए की टू मॉडर्न पोयट्री** में दिया है। उन्होंने भारतीय चिंतन के आधुनिक अंग्रेजी काव्य पर प्रभाव के साथ ही उसकी आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धांतों के साथ संगति का भी उल्लेख किया है। उनके शब्दों में—

पिछले दशक के साहित्य में रहस्यवाद के प्रति रुचि बढ़ती हुई परिलक्षित होती है। यह रुचि मुख्यतः प्राच्य धर्म में बढ़ी है। भारत और चीन के प्रमुख धर्मग्रन्थ इस शताब्दी के आरंभ में प्रकाशित हुए। थियोसोफिकल समाज का गठन 1903 ई. में हुआ। ए. ई. और ईट्स के विचार शुरू में थियोसोफी की विचारधारा से प्रभावित थे। इन चीजों में रुचि जल्द खत्म हो गई लेकिन

रिल्के, इलियट और वेलरी—जो मुख्यतः

रहस्यवादी कवि हैं—के माध्यम से वह पुनः

उभरी है। इस सम्बन्ध में यह महत्वपूर्ण है कि भारत और चीन के कतिपय धार्मिक सिद्धांत सापेक्षवाद के सिद्धांत के बिल्कुल अनुकूल पड़ते हैं। वे कार्यकारण सिद्धांत को वैसा महत्व नहीं देते।

इलियट और लॉरेंस डरेल के ये वक्तव्य आधुनिक अंग्रेजी कविता की मुख्य चिंता की ओर ध्यान दिलाते हैं और साथ ही यह भी स्पष्ट करते हैं कि उसके निराकरण में भारतीय जीवन-दृष्टि क्यों इतना सार्थक प्रतीत हुई। इलियट की कविताओं की बहुत से समीक्षकों ने इसलिए प्रशंसा की थी कि उनमें आधुनिक पीढ़ी का मोहभंग स्पष्ट दिखाई देता है। इलियट की इस सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रिया थी यह उन्हीं के जोरदार शब्दों में—

मैं—पीढ़ी—इस शब्द को नापसंद करता हूँ। जब मैंने **द वेस्टलैंड** लिखी तो कुछ प्रशंसक समीक्षकों ने लिखा कि मैंने इस पीढ़ी के मोहभंग को अभिव्यक्ति दी है। लेकिन यह निरर्थक है। संभव है मैंने उनके मोहमुक्त होने के भ्रम को अभिव्यक्ति दी हो लेकिन यह मेरा आशय नहीं था।

आधुनिक अंग्रेजी की चिंता व्यापक थी। तात्कालिक सांस्कृतिक संकट और युद्धोत्तर संभ्रम ने उसे उद्वेलित अवश्य किया था लेकिन अंग्रेजी कविता की मुख्य चिंता मानव व्यक्तित्व से सम्बद्ध प्रश्नों को हल करना था। यही कारण है कि **लव सांग ऑव जे अल्फ्रेड प्रूफ्रॉक** में इलियट मानव व्यक्तित्व के विश्रुंखलन की बात उठाते हैं। मानव व्यक्तित्व के विश्रुंखलन ने ही इलियट को आरंभ में प्रेरित किया और इसी के विश्लेषण के क्रम में वे परम्परा, अध्यात्म और पश्चिमेतर दर्शन की गुत्थियों की ओर आकृष्ट हुए। जहां बहुत सारे कवि-विचारक परंपरा के लोप या फिर अवरोधात्मक प्रभाव की चर्चा में व्यस्त थे इलियट ने अपनी कविताओं और अपने समीक्षात्मक विवेचन द्वारा (विशेषतः **ट्रैडिशन एंड द इंडिविडुअल टेलेंट** शीर्षक निबन्ध में) कवि-व्यक्तित्व के निर्माण में परंपरा के महत्वपूर्ण योगदान को रेखांकित ही नहीं किया, परंपरा की सूक्ष्म जानकारी को अपरिहार्य बतलाया। इलियट की कविता में बार-बार मिथकीय संदर्भों और विभिन्न स्रोतों से दिए गए उद्धरण से उत्पन्न दुरुहता का उल्लेख हमेशा से होता आया है। शुरू में आलोचकों ने उनका विरोध इसलिए भी किया था कि उनकी कविता में जो उद्धरण या प्रसंग बाह्य स्रोतों से दिए जाते हैं उससे कविता के अर्थ या अन्वय पर प्रकाश नहीं पड़ता बल्कि वे प्रचारात्मक युक्तियां हैं जिनके द्वारा वे अपनी बौद्धिक श्रेष्ठता का प्रदर्शन करना चाहते हैं। बाद में लीविस और रिचर्ड्स ने उस आरोप का खंडन किया और सिद्ध किया कि इलियट का उद्देश्य काव्यानुभूति को बहुस्तरीय और जटिल बनाना है और उससे

भी बढ़कर संदर्भच्युत स्थितियों को एक बृहत्तर मानवीय और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है।

इसी क्रम में उन्होंने जिन भारतीय आसंगों एवं परिकल्पनाओं का उपयोग किया है उनकी एक झलक इस निबन्ध में प्रस्तुत की गई है। इसके लिए मैंने उनकी प्रमुख कविताओं को ही ध्यान में रखा है। वैसे इस दृष्टि से उनके नाटकों का भी अध्ययन हो सकता है। खासकर **द फैमिली रियूनियन** में भारतीय दार्शनिक परिकल्पनाओं के प्रयोग के खुले संकेत हैं।

सबसे पहले **लव सांग ऑव जे. अल्फ्रेड प्रूफ्रॉक** को ही लें। कविता का नायक प्रूफ्रॉक आंतरिक संलाप (इंटीरियर मोनोलॉग) के माध्यम से अपनी अंतर्यात्रा का रेकॉर्ड प्रस्तुत करता है। हालांकि पढ़ते हुए ऐसा लगता अवश्य है जैसे वह एक धुंधली शाम को होटलों, रेस्त्राओं और शहरों की गलियों से गुजर रहा है। लेकिन ध्यान से देखने पर यह पता चलता है कि इस बाहरी दृश्य जगत का एक आभास मात्र प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः यह यात्रा अपने ही भीतर की दुनिया की है। और कविता के अंत तक आते-आते यह साफ हो जाता है कि यह प्रेमगीत न होकर एकालाप है—अपने बिखरते हुए व्यक्तित्व के एक-एक हिस्से को संजोने का प्रयत्न, अपनी खोई हुई अस्मिता सहेजने का प्रयास, और अपने से ही सम्बद्ध होने की कोशिश। कविता के अंत में प्रूफ्रॉक के जीर्णशीर्ण अस्त-व्यस्त संसार से हटकर सारा परिदृश्य समुद्र के प्रतीक दृश्य में केन्द्रित हो जाता है। समुद्र अनन्तता और सम्पूर्णता का प्रतीक है जो सारी अपूर्णता और अस्त-व्यस्तता को अपने में विलीन कर लेता है। यह विलयन अपने आप में एक उपलब्धि है क्योंकि विलयन की इस स्थिति में सृष्टि एकत्व के रूपाकार में धुल जाती है, आत्मा के केन्द्र में समाहित हो जाती है। जुंग ने फ्रायड का विरोध करते हुए व्यक्तित्व की जिस समग्रता की चर्चा की है वह इसी प्रक्रिया की उपज है। समग्रता की यही तलाश इलियट की कविता की मुख्य चिंता है। और जिस समुद्र के प्रतीक दृश्य में आकर यह कविता समाप्त होती है वह उपनिषदीय सूत्रों की भाषा से उद्धृत है। यथा :

जिस तरह नदियां समुद्र तक पहुंचकर पूर्ण शांति का अनुभव करती हैं और इस क्रम में उनके नाम और रूप मिट जाते हैं और लोग सिर्फ समुद्र की चर्चा करते हैं उसी तरह सोलहों प्रकार के द्रष्टा उसी आत्मा तक पहुंचते हैं और पूर्ण शांति का अनुभव करते हैं, उनके भी नाम रूप मिट जाते हैं और लोग सिर्फ आत्मा की ही चर्चा करते हैं।¹

इसके बाद की कविता **जेरॉटन** भी नायक प्रधान है। वह भी प्रूफ्रॉक की तरह ही कहता है : आई हैव लॉस्ट माई पैशन। इस कविता में भी उसके वातावरण, इतिहास और व्यक्तिगत

1. प्रश्न उपनिषद, जवां मस्करा, पेग्विन बुक्स, 1974,

संदर्भों के माध्यम से बिखरते हुए व्यक्तित्व की तस्वीर खींची गई है। आगे जाकर कविता में कई ऐसे प्रसंग हैं जिनसे जेरोटन के माध्यम से आधुनिक मानव की संवेदन-हीनता और अक्षमता को संप्रेषित किया गया है। अपने व्यक्तिगत इतिहास की चर्चा करते हुए जेरोटन बार-बार सभ्यता के इतिहास से भी टकराता है और जीवन की सार्थकता की कुंजी खोजने का प्रयास करता है। इसी क्रम में अपने एक मानसिक संभ्रम का भी वह चित्र खींचता है। लेकिन यह मानसिक संभ्रम जितना उसका निजी है उतना ही तत्कालीन पश्चिमी सभ्यता में पले हुए मानव का भी—

साइंस आर टेकन फॉर बंडर्स...इन द जुबेशंस ऑफ द ईयर केम क्राइस्ट द टाइगर¹

जीसस को व्याघ्र के रूप में देखने की जिस घटना का गतिमय चित्र यहां खींचा गया है वह अर्थपूर्ण है। अंतिम पंक्ति में क्रिया “केम” को पहले रखकर इलियट घटना की सजीवता, गतिमयता और विशेषतः आकस्मिकता को एक झटके से उपस्थित कर देते हैं। एक साथ ही जेरोटन और उसके जैसे लोगों के सामने जीसस व्याघ्र के रूप में कौंध जाते हैं। जीसस की अनुभूति लोक जीवन का अंग है। इसी तरह जीसस को व्याघ्र-रूप में देखने की घटना भी लोक-जीवन की अनुभूति है—केवल जेरोटन की नहीं। कविता के इस अंश के आरम्भ में कर्मवाच्य में जिस तथ्य की रिपोर्ट (साइंस आर टेकन फॉर बंडर्स) दी गई है वह मात्र जेरोटन की नहीं बल्कि एक समुदाय की ही अनुभूति है।

इस तरह के विवादास्पद और चौंकाने वाले काव्य-बिम्ब अन्य कविताओं में भी हैं। इस स्थल पर व्याघ्र का यह बिम्ब एक विशेष मानसिक संभ्रम की उपज है जिसके भूल में वे मानसिक और प्रवृत्तिगत अवरोध हैं जो आध्यात्मिक उत्थान को बाधित करते हैं। इन अवरोधों की जो तालिका पातञ्जलि के योगसूत्र में दी गई है उसका उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा—

व्याघ्रिस्त्यान संशय प्रमादालस्याविरति भ्रांतिदर्शन²
लब्धभूमिकत्वा न वस्थित्वानि चित्तविक्षेपास्ते ज्ञतरायाः ।

इस तरह चित्त के निरोध में भ्रांतिदर्शन भी एक बाधा है। भ्रांतिदर्शन के मूल में व्यक्तिगत निष्ठा के साथ-साथ सामुदायिक निष्ठा का ह्रास भी एक कारण है जिसकी ओर इस कविता में संकेत किया गया है। प्रूफ्रॉक वाली कविता में मानव व्यक्तित्व की समग्रता की तलाश के जो संकेत दिए गए हैं उन्हीं का पल्लवन आगे की कविताओं में हुआ है और इस दृष्टि से जेरोटन एक महत्वपूर्ण कड़ी है। मानव-व्यक्तित्व एकदम एकाकी और इतिहास एवं धर्म से कटकर विकसित नहीं हो सकता।

1. टी. एस. इलियट, क्लेक्टेड पायम्स फेवर एंड फेवर,
पृष्ठ-36-39

इसकी सबसे कचोटपूर्ण अभिव्यक्ति जेरोटन के इस वक्तव्य में मिलती है—

आई स्टिफेन इन अ रेंटेड हाउस ।

द वेस्टलैंड एकाकी व्यक्तियों के संबंध में न होकर एक प्रसिद्ध ग्रेल मिथकीय आख्यान की पुनर्व्याख्या है। इस पुनर्व्याख्या के आधार पर भारतीय औपनिषदिक प्रतीक और परिकल्पनाएं हैं—इसका प्रमाण कविता के अंत में दिए गए वृहदारण्यक उपनिषद के सूत्र ही नहीं हैं। कविता के प्रथम खंड में मैडम सोसोस्ट्रीस जिस आतंकपूर्ण ढंग से अपने ताश के पत्तों का उल्लेख करते हुए एक का वर्णन करती है—

हियर इज द मैन विथ थ्री स्टेव्स, एंड हियर दी हवील—
उससे जीवन का चक्रीय स्वरूप साफ भलकता है। साथ ही थ्री स्टेव्स वाले पुरुष से त्रिशूलधारी शिव का ध्यान भारतीय पाठकों को आ जाय तो वह एकदम अनुपयुक्त नहीं होगा।

कर्मों की शृंखला ही उस चक्र का निर्माण करती है जिसके द्वारा जीव का आवागमन निर्धारित है। कविता के आरंभ में मानव जीवन को अ हीप ऑफ ब्रोक्न इम्पेजेज के रूप में चित्रित किया गया है। वही जीवन कर्म के अनुशासन में बंधकर एक खास संगति और अर्थ प्राप्त करता है। गीता में भगवान कहते हैं :

एवं प्रवर्तितं चक्रम् नानुवर्तयतीह चः ।

आधायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ सजीवति ॥

कर्मचक्र के इस भारतीय दर्शन के प्रति संकेत करने से इलियट का अभिप्राय वस्तुतः जीवन के सही दर्शन को उद्घाटित करना है। हम ऐसा नहीं कह सकते कि यूरोपीय दर्शन और विज्ञान में जीवन की अर्थवत्ता को नहीं पहचाना गया है। लेकिन इतना सच है कि इलियट के अतिरिक्त उसके समकालीन कवि और चिंतक भी अपनी स्वदेशी विचारधारा से उस समय संतुष्ट नहीं थे।

द वेस्टलैंड में जो केन्द्रीय मिथक है उसके अनुसार फिशर राजा की राज्यसीमा की धरती बंजर हो गई थी। इलियट उसकी व्याख्या पारंपरिक आख्यान के आधार पर नहीं करते। वह उस अभिशप्त धरती को वासना, क्रोध, भ्रम और घृणा की उपज मानते हैं। सेंट ऑगस्टाइन और बुद्ध दोनों ही दो तरह की अग्नि की चर्चा करते हैं। एक अग्नि वह है जो दग्ध करती है, जीवन को अपवित्र करती है और दूसरी वह जो आत्मशुद्धि के लिए आवश्यक है, जिसके भीतर से गुजरकर ही निर्मलता प्राप्त की जा सकती है और आत्मतत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है।

इस कविता में जिस रूपांतरण की चर्चा की गई है— बंजर भूमि के अपने स्वरूप प्राप्त करने की— वह वर्षा के द्वारा ही संभव है। कविता के अंतिम खंड में उसी जीवनदायिनी वर्षा के होने की शर्तें दी गई हैं। इस बिन्दु पर आकर कविता अपने

परंपरागत आख्यान से अलग हटकर स्पष्टतः एक बृहत्तर संदर्भ ग्रहण करती है। इलियट यहां गंगा के शुष्क और निर्जल होने की बात उठाते हैं, हिमालय के ऊपर बादलों के इकट्ठा होने की और ब्रजध्वनि के उभारने का दृश्य अंकित करते हैं और कविता की यूरोपीय भावभूमि को दधीचि के अस्थिदान के प्रसंग से जोड़कर सीधे भारतीय मिथकीय आख्यान से सम्बद्ध कर देते हैं। दधीचि ने अस्थिदान करके आत्मोत्सर्ग के माध्यम से परम तत्व का साक्षात्कार किया था। कविता के अंत में दत्त, दयाध्वम और दमयन्त सम्बन्धी उनके निर्देशों को प्रस्तुत करके इलियट आधुनिक जीवन की त्रासदी के निराकरण का मार्ग ढूंढते हैं।

इलियट की परवर्ती रचनाओं में आत्मा की ऊर्ध्वगति का रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है। इनमें जर्नी ऑव द मेजाइ, मैरिना ऐश वेंसडे और फोर क्वार्टेट्स प्रमुख हैं। इस सम्बन्ध में ऐश वेंसडे और फोर क्वार्टेट्स के उल्लेख स्थलों की मैं चर्चा करना चाहूंगा जिनमें आत्मा के उन्नयन का वही स्वरूप झलकता है जो भारतीय योगदर्शन पर अवलम्बित है।

अधिकांश समीक्षक ऐश वेंसडे को डांटे की द डिव्हाइन कॉमडी से प्रेरित बतलाते हैं। दांटे के प्रभाव को स्वयं इलियट भी कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं। लेकिन इसके साथ ही ऐश वेंसडे में जिस अनुभूति की चर्चा है उसकी तुलना उपनिषदों और योगसूत्र में वर्णित ऐंद्रिय और मानसिक अवरोधों से की जा सकती है जिनका अनुभव आध्यात्मिक साधना के क्रम में होता है।

ऐश वेंसडे एक अकेली कविता न होकर कविताओं की एक शृंखला है। उनमें आरंभ में ब्लेस्डफेस या परमात्मा का निषेध है। आध्यात्मिक साधना के प्रारंभिक क्षणों में आलस्य और प्रमाद भी रहते हैं। इन्द्रिय जन्य संसार से सम्पर्क पूरा नहीं छूट पाता है और व्यक्ति अपना मार्ग बदलना नहीं चाहता। इमीलिए इलियट का यह कहना —आई रिनाउंस द ब्लेस्ड फेस— मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संगत प्रतीत होता है। लेकिन धीरे-धीरे उस परम सत्ता का आकर्षण भी बढ़ता है और एक द्वन्द्वपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है—बिकाँज आई कैन नॉट होप टू टर्न अगेन। एक बार धुंधली सी झलक मिलने के बाद पुनः इन्द्रिय-ग्राह्य जगत की ओर लौटा नहीं जा सकता। पातंजलि के जिस श्लाक की ऊपर चर्चा की गई है उसमें भी इसका उल्लेख है। विवेकानंद अपनी टिप्पणी करते हुए कहते हैं :

मानसिक सामर्थ्य के बावजूद मन में शंकाओं का उदय स्वाभाविक है। हालांकि कुछ खास तरह की अनुभूतियां भी होती हैं और वही मस्तिष्क को धर्म प्रदान करती हैं। शुरू में मन को एकाग्र करना सहज होता है और लगता है जैसे बहुत तेजी से प्रगति हो रही है। लेकिन अचानक एक दिन सब

रुक जाता है और साधक अपने आपको एकदम उलझा हुआ पाता है। लेकिन अपना प्रयास जारी रखो। सारी प्रगति इसी उत्थान और पतन के भीतर से होकर ही है।

आत्मा की इस संघर्षपूर्ण यात्रा के चित्र प्रस्तुत करने में इलियट का उद्देश्य वस्तुतः वृत्तियों के अवरोधात्मक प्रभाव की ही चर्चा करना है जिससे निरंतर युद्ध करके ही आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त किया जा सकता है। बाद में कविता के एक खंड की समाप्ति पर इलियट यात्रा की समाप्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं :

द सिंगल रोज
इज नाउ द गार्डेन

हमारी योगपरंपरा और तांत्रिक साधना में सहस्रदल कमल के दर्शन को साधन का परम लक्ष्य माना गया है। 'फोर-क्वार्टेट्स' में इलियट भी इस कमल की चर्चा करते हैं—

ऐंड द पूल बाज़ फिल्ड बिद वाटर आउट ऑव
सनलाइट ऐंड द लोटस रोज क्वायटली. क्वायटली

ऐश वेंसडे में एक निश्चित प्रगति है—अंधकार, नैराश्य और द्वन्द्वपूर्ण मनः स्थिति से उभरकर ईश्वर और जगत की सत्ता का स्वीकार एवं पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना का विकास—

ऑवर पीस इन हिज विल

सफ़र मी नॉट टू बी सेपरेटेड
ऐंड लेट मी क्राई अनटू दी

फोर क्वार्टेट्स की काव्यवस्तु पूर्णतः श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धांतों पर आधारित है। भगवान् कृष्ण ने जगत, परमसत्ता, कर्म, काल और मुक्ति से सम्बन्धित जिन विचारों को व्यक्त किया है इलियट ने उनका उल्लेख बड़ी ही सरल और भावपूर्ण भाषा में इस कविता में किया है। उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियों को देखिये—

द इनर फ्रीडम फ्रॉम द प्रैक्टिकल डिजायर
द रिलीज फ्रॉम ऐक्शन ऐंड सफ़रिंग
रिलीज फ्रॉम द इनर ऐंड द आउटर कम्पल्शन

× × ×

डिसेंड लोअर, डिसेंड ओनली

इनटू द वर्ल्ड ऑव परपीच्युअल सॉलीच्युड

.....

डेप्रिवेशन ऐंड डेस्टीच्युशन ऑव आल प्रापर्टी

डिसेकेशन ऑव द वर्ल्ड ऑव सेंस

× × ×

फॉर द पंटेन इज न्यू इन एवरी मोमेंट

ऐड एवरी मोमेंट इज अ न्यू ऐंड शॉकिंग
बैल्यूएशन ऑफ ऑल दैट वी हैव बीन

× × ×
आइ सेड टू माई सोल, बी स्टिल, ऐंड लेट
द डार्क कम अपॉन यू बिच शैल बी द
डार्कनेस ऑफ गॉड ।

इन पक्तियों में ऐक्शन और सफरिंग तथा डार्कनेस और स्टिलदेस के द्वन्द्व से ऊपर उठने का जो निर्देश है वह भगवान द्वारा प्रतिपादित प्रकाश और प्रवृत्ति के मोह से ऊपर उठकर परम तत्व में सर्वदा लीन रहने के उपदेश की ही पुनरावृत्ति मात्र है—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।

न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति ॥

उसी तरह इलियट जब द पैटर्न इज न्यू इन एवरी मोमेंट की बात कहते हैं तो भगवान की यह उक्ति स्वभावतः याद आती है—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।

न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम ॥

अंत में इलियट उस मानसिक स्थिति का वर्णन करते हैं जिसमें सारी अंतःवृत्तियां एकाग्र होकर परमसत्ता की अनुभूति से प्रेरित होकर आह्लाद में लीन हो जाती हैं—

ऑल मेनर ऑफ थिंगशैली बी वेल
हवेन द टंग्स ऑफ फ्लेम आर इनफोल्डेड
इंटू द काउन्ड नॉट ऑफ फायर
ऐंड द फायर ऐंड द रोज आर वन

‘टंग्स ऑफ फ्लेम’ का यह बिम्ब कुण्डलिनी के जागरण का चित्र प्रस्तुत करता है। कुंडलिनी के सुप्त होने तक ही सारा अज्ञान है। कुंडलिनी के जाग्रत होने पर ही परमसत्ता की सही अनुभूति संभव है और तभी सारे द्वैत और द्वन्द्व मिट सकते हैं—फायर और रोज के एक होने की अनुभूति तभी संभव है।

भारतीय चिंतनधारा का प्रभाव सिर्फ इलियट की काव्य-वस्तु पर ही नहीं उनकी कविता के शिल्प और प्रतीक विधान पर भी पड़ा। जिस अनुभूति की चर्चा इलियट करना चाहते थे उसके लिए उपयुक्त भाषा उन्हें अपनी पूर्ववर्ती साहित्यिक परंपरा से उपलब्ध नहीं हो पाई। इसीलिए उन्हें भारतीय उप-निषदों और संस्कृत वाङ्मय में प्रयुक्त प्रतीकों और बिम्बों का इस्तेमाल करना पड़ा। रात्रि, अंधकार, चक्र, नृत्य, सीढ़ी, अग्नि, चिड़िया, मछली और कमल—ये सब प्रतीक भारतीय काव्य-चेतना के अभिन्न अंग हैं। इनके माध्यम से जीव की सांसारिक गति और आध्यात्मिक उत्थान को प्रस्तुत करने में इलियट को काफी सुविधा हुई। □

व्याख्याता, अंग्रेजी विभाग, नालंदा कालेज, बिहारशरीफ ।

नीदरलैंड में हिन्दी शिक्षण

□ डा. उमादत्त शर्मा ‘सतीश’

पंद्रहवीं शताब्दी से ही डच विद्वान भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, विज्ञान, इतिहास और भाषा के अध्ययन में रुचि लेने लगे थे। अंग्रेजों से पूर्व डच लोग भारत में व्यापारिक कंपनी के रूप में पहुंच चुके थे। ईसाई धर्म के प्रचारक पादरी भी भारत के लोगों के संपर्क में आए। इन पादरियों ने भारतीय विद्या प्राप्त की—भाषाएं सीखीं और संस्कृत तथा हिन्दी के व्याकरण एवं शब्दकोश तैयार करने शुरू किए। नीदरलैंड के सबसे प्राचीन विश्वविद्यालय लाइदन में संस्कृत भाषा का अध्यापन तो सोलहवीं शताब्दी से ही आरंभ हो गया था और अब तक निरंतर हो रहा है। सन् 1667 में किर्चरी ने ‘चाइना इलस्ट्रेटा’ नामक पुस्तक में देवनागरी लिपि का प्रकाशन किया। पुस्तक के सप्तम अध्याय में पांच प्लेटें हैं, इन प्लेटों में प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी की अष्टाध्यायी के प्रथम सूत्र के देवनागरी

वर्ण प्रकाशित हुए हैं। उक्त पुस्तक आमस्टरदाम नगर से प्रकाशित हुई थी।

सन् 1775 में प्रो. शुल्जी ने ‘ग्रामेटिका हिंदोस्तानिका’ नामक हिंदी व्याकरण तैयार किया और उसे प्रकाशित कराया। ‘ग्रामेटिका हिंदोस्तानिका’ की भूमिका के पृष्ठ तीन पर ‘देवनागरीकाएं’ शब्द के नीचे ‘क’ से ‘ह’ तक बत्तीस हिंदी व्यंजन प्रकाशित हुए हैं। हिंदी की व्याकरणिक कोटियों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। अठ्ठारहवीं शताब्दी में भी भारत विद्या के अध्ययन का क्रम हालैंड में जारी रहा। सन् 1930 में श्री रुदोल्फ कारस ने ‘दि ब्रिटिश इन्डियस इन सूरीनाम’ पुस्तक पारामारी सूरीनाम से प्रकाशित कराई। प्रस्तुत पुस्तक में हिन्दी व्याकरण पर भी चर्चा की गई है। पुस्तक के अन्त में डच-हिंदी शब्दावली भी दी गई है। सन् 1966 में श्री गुलज़ार ने ‘लियर

बुक दे हिंदोस्तानी ताल' पारामारीबो-सूरीनाम से प्रकाशित किया। श्री गुलजार ने उक्त पुस्तक में बाइस पाठों के माध्यम से हिंदी भाषा के अध्ययन पर बल दिया है। सन् 1975 में सूरीनाम डच उपनिवेशवाद से मुक्त हुआ। सूरीनाम से एक लाख भारतवंशी हालैंड चले आए और तब से हालैंड के स्थाई नागरिक बन गए हैं। सूरीनाम से आए एक लाख भारतवंशियों की मातृभाषा हिंदी है। नीदरलैंड के सभी विश्वविद्यालयों में हिन्दी शिक्षण का पाठ्यक्रम 'इंडोलाजी' विभाग के ही अंतर्गत होता रहा है। अब इस देश में हिन्दी शिक्षण की दिशा में अनेक स्वैच्छिक संस्थाएं कार्य कर रही हैं। लाइदन विश्वविद्यालय में डा. मोहनकान्त गौतम हिंदी अध्यापन करते हैं। यून्नेस्त विश्व-विद्यालय में डा. दाम्सतीस्त हिन्दी अध्यापन करते हैं। डा. दाम्सतीस्त ने हिन्दी कथाकार श्री मोहन राकेश की कहानियों पर शोधकार्य किया है। श्री मोती माड़े ने 'सरनामी व्याकरण' की रूपरेखा प्रस्तुत की है। श्री राजेन्द्रनाथ गेंदा ने सरनामी का ध्वनिविज्ञान, ध्वनिग्राम विज्ञान और पदधार्मिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा. उमादत्त शर्मा 'सतीश' ने सरनामी नाते-रिश्तों की शब्दावली का समाजभाषा वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। कुमारी ए. एल. बास्क ने सरनामी वाक्यरचना पर शोधकार्य किया है। कुमारी सीता कृष्णा ने सरनामी व्याकरण पर अनुसंधान कार्य किया है। इस प्रकार नीदरलैंड में सरनामी-हिन्दी पर शोधकार्य निरन्तर जारी है और हिन्दी तथा हिन्दी की एक शैली सरनामी अध्येताओं के लिए मुख्य विषय बना हुआ है।

भोजपुरी, ब्रज अवधी के मिश्रण से पनपी 'सरनामी' सूरीनाम के भारतवंशियों द्वारा बोली जाती है। नीदरलैंड में पिछले कई वर्षों से बसे डेढ़ लाख से भी अधिक भारतवंशी जो सूरीनाम तथा अन्य देशों से आकर नीदरलैंड में बस गए और अब स्थाई रूप से नीदरलैंड के नागरिक हैं, अपने धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा मातृभाषा से सदैव जुड़े रहने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। पाश्चात्य वातावरण में रहने पर नयी पीढ़ी के युवक-युवतियों में अपने धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा मातृभाषा हिन्दी के प्रति अनुराग घटता जा रहा प्रतीत होता है, जो भविष्य में भारत-वंशी समाज की सांस्कृतिक अस्मिता के लिए हानिप्रद सिद्ध हो सकता है। अतः देश के विभिन्न नगरों और उपनगरों में कार्यरत श्री सनातन धर्म संस्थाएं तथा आर्य समाज की सभाएं एवं हिन्दी परिषद के तत्वावधान में संचालित हिन्दी संस्थान विशेष रूप से भारतवंशी समाज में सांस्कृतिक एवं भाषिक एकता बनाए रखने पर तथा विभिन्न आयोजनों द्वारा एक स्वस्थ वातावरण बनाने पर बल देते रहते हैं। देश के देनहाख, आम-स्तरदाम, यूलेस्त, रीतरदास, देल्फत, लाइदन और रत्रोनिखन नगरों तथा कई उपनगरों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक सभाएं आयोजित करके धार्मिक प्रवचन, कथापूजा, कार्यक्रम, यज्ञकर्म, वेदपाठ श्री भगवद्गीता चिंतन तथा श्री रामचरितमानस चर्चा

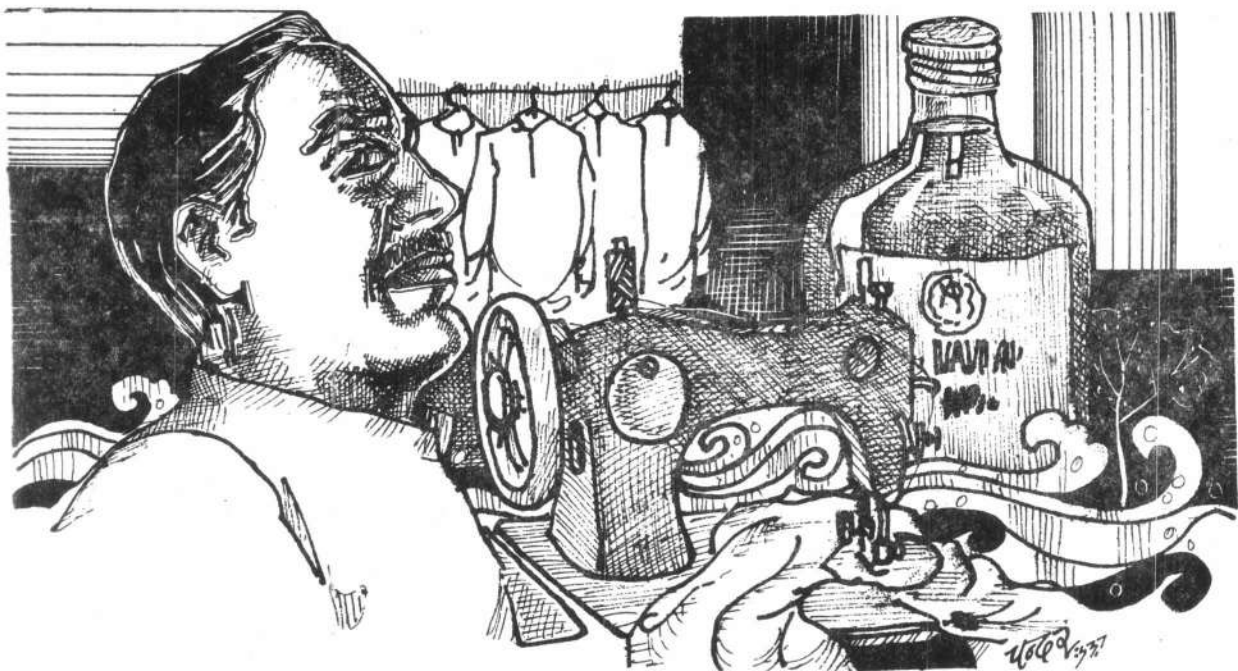
में हिन्दी प्रयोग के साथ-साथ हिन्दी भाषा शिक्षण के कार्यक्रम भी चलाए जाते हैं।

देनहाख नगर से 'सरनामी' मासिक पत्रिका का प्रकाशन निरन्तर हो रहा है। इस पत्रिका के संपादक सरनामी के विशिष्ट कवि श्री जीतनारायण हैं। पत्रिका में साहित्य, संस्कृति तथा सामाजिक गतिविधियों पर लेख प्रकाशित किए जाते हैं। देनहाख से ही 'ऐसा समाचार' नामक दूसरी मासिक पत्रिका प्रकाशित होती है। इसमें भी भारतवंशी समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गतिविधियों पर प्रकाश डाला जाता है। इस पत्रिका के संपादक पहले श्री मोतीमाड़े रहे, अब उनके स्थान पर श्री अशरफ कार्य कर रहे हैं। इसी प्रकार यूलेस्त से 'लालारुख' नामक भारतवंशी संस्था द्वारा 'लालारुख' मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है। इस पत्रिका के संपादक श्री शिवगोविंद तथा श्री रामबकस हैं। ('लालारुख' कलकत्ता से सूरीनाम जाने वाला पहला जहाज था) उपर्युक्त इन तीनों पत्रिकाओं की भाषा डच सरनामी और हिन्दी है। सूरीनाम में भोजपुरी, अवधी, ब्रज तथा पहाड़ी भाषाओं के मिश्रण से पनपी 'सरनामी' भाषा भारतवंशियों के साथ नीदरलैंड में भी पहुंची। नीदरलैंड के कई युवक तथा युवतियां सरनामी हिन्दी में कविताएं, लेख, कहानी आदि साहित्य रचनाएं करते हैं और पत्रिकाओं में वे रचनाएं प्रकाशित होती रहती हैं। हिन्दी परिषद, नीदरलैंड की ओर से देश में हिन्दीभाषा तथा साहित्य शिक्षण के केंद्र चलाए जा रहे हैं। परिषद के अध्यक्ष श्री ब्रज-मोहन, सचिव श्री बंधू तथा श्री रामबरन, श्री राज गेंदा, श्री बदलू, श्री बी. तिवारी, डा. गौतम, डा. दाम्सतीस्त आदि सदस्यों ने देश में हिन्दी शिक्षण कार्यक्रम में तेजी एवं सुदृढ़ता लाने के लिए हिन्दी संस्थान की स्थापना की है। भारत के विद्वान डा. उमादत्त शर्मा 'सतीश' हिन्दी संस्थान के निदेशक पद पर कार्यरत हैं और उनके द्वारा हिन्दी शिक्षण की विभिन्न परियोजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं। हिन्दी शिक्षण की दिशा में वर्तमान समय में चौदह केन्द्र देश भर में कार्य कर रहे हैं। अध्यापक प्रशिक्षण के दो केंद्र कार्यरत हैं जिनमें अध्यापकों को हिन्दी शिक्षण की नई प्रविधि का डा. शर्मा द्वारा प्रशिक्षण दिया जा रहा है। □

भारत वर्ष

बाल वर्ष, महिला वर्ष, संचार वर्ष,
हर वर्ष हरेक वर्ष,
कब तक मनाया जायेगा।
जड़ की जगह पत्तों को
कब तक सींचा जायेगा।
पूछता हूँ मनाने वालों से
भारत वर्ष कब मनाया जायेगा

विश्वनाथ शर्मा
गोरखपुर



माधो चाचा

— श्याम बिहारी सिंह 'श्यामल'

ऐसा नहीं कि माधो चाचा कोई खानदानी दर्जी थे। बल्कि थे वे एक अच्छे परिवार से। पुरा नाम था—माधव शरण प्रसाद, लेकिन हम सभी उन्हें माधो चाचा ही कहा करते थे। शुरू में तो उन्होंने इसे शगल के रूप में अपनाया था। लेकिन, बाद में इतना इसमें डूब चुके थे कि इसे ही अपना व्यवसाय बना डाला! तब डालटनगंज शहर भी ऐसा न था। इक्के-दुक्के मकान थे—जहां-तहां अधिकांश भाग तो जंगल था, जिसे काटकर आज इतना विस्तार हुआ है। कोयल नदी का घाट भी तब बहुत छोटा था। सच तो यह है कि तब डालटनगंज कोई शहर नहीं, बल्कि एक कस्बा-मात्र था।

अंग्रेजों के उस जमाने में जो माधो चाचा का सिला हुआ कपड़ा पहनता उसे प्रायः बहुत बड़ा आदमी समझा जाता था। बहुत नाम था उनका, जमाने में। सभी बड़े घरानों में उनके ही सिले कपड़े पहने जाते थे। जिले में कोई भी बड़ा अंग्रेज अफसर आता, तो कपड़े सिलाने के लिए माधो चाचा को ही बुलाया जाता। माधो चाचा कुनमुनाते-कुनमुनाते जा पहुंचते। कभी मन अगर फिरा तो ऐसा सिल दिया कि पहनने वाला धन्य-धन्य हो उठा और नहीं तो फिर...

उनसे कपड़े सिलवाने के लिए गांव-भर के बच्चे भी कम ज़ोर नहीं मारते थे। कपड़े लेकर माधो चाचा के पास जा पहुंचते, वह हंसकर नाप भी ले लेते। लेकिन महीनों दौड़ना पड़ता। धीरे-धीरे करके वह पूरे पैसे भी खींच लेते और टरकाते भी रहते। न जाने उनकी यह क्या लत थी कि कोई भी कपड़ा

सिल तो लेते, पर जरा-जरा-से काम के लिए अधूरा छोड़ देते। किसी में केवल पाँकेट बाकी होती, तो किसी में काज-बटन। इस तरह प्रायः अधिकांश काम वह लटकाये रखते।

माधो चाचा के यहां लोगो को महीना, दो महीना ही नहीं, कभी-कभी तो छह-छह महीने चक्कर काटना पड़ता था। दुकान में बैठे माधो चाचा देखते कि फ्लां आ रहा है, जिसे बस्त्र देना है सिलकर तो भटपट उसका बस्त्र हाथ में उठा लेते और झूठ-मूठ उलटने-पलटने लगते। और कहते "हां-हां! तोहरेत बनावत हीवऽ! बस्स-बस्स—एकाध हफ्ता में ले जईहऽ!" वह आश्वस्त होकर चला जाता। ज्यों ही वह वहां से खिसकता, माधो चाचा तत्काल उसके कपड़े लापरवाही से एक ओर रख देते। एक हफ्ते बाद जब पुनः वह आता, तो फिर वही बात। परन्तु न जाने क्या जादू था उनमें कि लोग उनकी सिलाई के दीवाने बने फिरते थे।

ऐसी कोई बात हीं कि उनकी रफ्तार बहुत धीमी थी या वह कामचोर किस्म के थे। उनकी रफ्तार तो ऐसी थी कि जो मन में आ जाए तो पूरा सूट देखते-देखते ही सिलकर रख देते। लेकिन, शर्त यह थी कि माधो चाचा ढरक जाएं। और इसकी मिर्फ एक ही दवा थी। जानकार लोग ऐसा ही करते भी थे। कपड़ा ले जाते तो बगल में एक बोतल शराब छिपाए (ढककर) लिये जाते। बोतल देखकर माधो चाचा के चेहरे पर रौनक दौड़ जाती। वे खिल उठते उस समय अगर वे कलकटर साहब

का भी कपड़ा सिल रहे होते तो भी तुरंत उछालकर एक ओर फेंक देते। बिजली के झटके से उस व्यक्ति के हाथ से कपड़े झपट लेते। दो मिनट के अन्दर ही नाप लेकर, अपनी कैंची-मशीन सम्भाल लेते। कपड़े काट रहे हों या सिल रहे हों, उनकी नज़र लगी रहती बोतल के आसपास ही। इतना ही नहीं एक ही बैठक में पूरी पोशाक तैयार कर डालते और उससे तत्काल बोतल झपटकर एक ओर निकल जाते। वस्त्र पहनने के बाद उधर ग्राहक भी बाग-बाग हो उठता और इधर माधो चाचा भी...। न जाने वह कौन सी इल्म थी उस आदमी के हाथों में कि उसकी हड़बड़ी में की गई सिलाई भी लोगों का मन जीत लेती थी।

सन् बयालीस की उस लड़ाई के ज़माने में यहां सुरेश्वर सिंह जैसे गांधीवादी नेता हुआ करते थे। सुरेश्वर बाबू यहां आन्दोलन के अगुआ थे। लगभग पचहत्तर-अस्सी लोग थे उनके पीछे—“महात्मा गांधी की जय” और “अंग्रेजों भारत छोड़ो।” के नारे लगाने वाले। सुरेश्वर बाबू का व्यक्तित्व भी भव्य गांधीवादी-संस्कारों का था—लम्बा, छरहरा-गोरा बदन, काली-धनी भौंहे, खिचड़ी बाल, गांधी-कट टोपी, खादी की धोती-कुर्ता-चादर। जब वह पहन ओढ़कर निकलते तो उन्हें दूर से भी पहचान लेना कठिन न था। उन्हीं दिनों की बात है। सभी आन्दोलनकारियों की खादी की पोशाक के लिए सुरेश्वर बाबू ने खादी-वस्त्र के थान मंगवाये थे। उन्होंने माधो चाचा को खबर भिजवाई कि मशीन वगैरह लेकर वह आन्दोलनकारियों के गुप्त रूप में ही आ जाएं और वहीं सारे वस्त्र सिल दें, उनके लिए सब कुछ की व्यवस्था रहेगी। परन्तु, माधो चाचा थे कि, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, परसों नहीं नहीं नरसों... तारीख पर तारीख दिए जा रहे थे।

माधो चाचा को टालते रहना आन्दोलनकारियों को बहुत बुरा लगा। परन्तु, सुरेश्वर बाबू तो माधो चाचा को बचपन से ही जानते थे। सभी को समझाते हुए सुरेश्वर बाबू ने कहा, “अरे माधो तो है ही सिरफिरा किस्म का। इस टाल-मटोल का, कोई बहुत बड़ा कारण नहीं है बल्कि यह तो उसकी आदत ही है आज की नहीं, बचपन से ही।”

आन्दोलनकारियों का फिर भी संतोष नहीं हुआ। उनमें हरिदेव सिंह दोहरा जवान था; उसने कहा, “सुरेश्वर काका। कहिए तो हम लोग उसे ही उठाकर मशीन-वशीन के साथ लिए-दिए यहीं आ पहुँचे।”

सुरेश्वर बाबू कुछ ना-नुकुर करते, इससे पहले ही सभी आन्दोलनकारियों ने एक साथ हां-में-हां मिला दी। सुरेश्वर बाबू हंसने लगे, “देखना सब कुछ अदब के साथ होना चाहिए। क्योंकि है वह महीन किस्म का आदमी और गुस्सेवर भी।”

आन्दोलनकारी जब माधो चाचा की दुकान पर पहुँचे तब वह पीढ़े पर बैठकर किसी कुर्ते का काज बना रहे थे। चार जवान भीतर प्रविष्ट हुए। दो जवानों ने पीढ़े समेत माधो चाचा को

उठा लिया और चल पड़े। दो अन्य ने उनकी कैंची, धागों की पोटलियां, छोटी-बड़ी सुइयों के पत्ते और सिलाई मशीन वगैरह समेटकर उठा ली।

कुछ ही देर में पीढ़े समेत माधो चाचा अपनी मशीन वगैरह के साथ सुरेश्वर बाबू के भीतरी बरामदे में पहुँच चुके थे। सुरेश्वर बाबू की हंसी थामते नहीं थम रही थी। माधो चाचा भी लगातार ही हँहँहँहँ... किये जा रहे थे। आन्दोलनकारियों के ठहाके भरे चेहरे भी देखने लायक थे। आन्दोलनकारियों का वह गुप्त-कक्ष यक-ब-यक कहकहों से गूँज उठा था।

सुरेश्वर बाबू के इशारे पर माधो चाचा ने कोने की ओर देखा। एक बाल्टी रखी हुई थी तथा समीप ही एक गिलास भी। माधो चाचा ने समीप जाकर देखा, तो खिल उठे। बोतल क्या, वहां तो भरी हुई बाल्टी ही रखी हुई थी। उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

माधो चाचा जल्द ही कुर्ता-बंडी काटने-छांटने में तन्मय हो गए। वह पूरे मनोयोग से कैंची चला रहे थे। उनके हाथ अपनी महत्तम गति से सक्रिय हो उठे। काम करते-करते जब मन में आता उठते और एक गिलास चढ़ाकर पुनः काम में जुट जाते।

आदत के अनुसार वह मौज में आकर किसी ओर चल न दें, और वहां से भाग न निकलें—इसके लिए सुरेश्वर बाबू ने चार जवानों को मुस्तैद कर दिया था।

कुछ ही दिनों के बाद बरामदे में तनी अलमनी पर लगभग पच्चीस या तीस-तीस कुर्ते और बंडी टंग गए। अब माधो चाचा नदी से फारिग होकर स्वयं आते जाते। भोजन वगैरह के बाद अधिकाधिक समय कार्य निबटाने में लगाते। यह दिनचर्या देख सुरेश्वर बाबू का उनकी तन्मयता पर विश्वास जग गया।

मुस्तैद लोगों के हटा लिए जाने के तीसरे दिन की बात है। माधो चाचा फारिग होने नदी किनारे गए हुए थे। आदत कुछ ऐसी थी कि किनारे से नीचे खेतों के गड्ढों में बैठकर उन्हें फारिग होने में कम से कम एक घंटा तो लग ही जाता उसी क्रम में कुछ सोचते रहते और सोचते ही चले जाते। कोयल तो ठहरी पहाड़ी नदी। दिन भी थे बरसात के। एकाएक पानी का बहाव तेज होने लगा। परन्तु माधो चाचा तो काफी देर से सिर नीचे झुकाये बैठे, उंगली से जमीन खोद रहे थे और कुछ चिन्तन भी कर रहे थे।

उनका होश तो तब उड़ा, जब उन्होंने देखा कि यक-ब-यक वहां बाढ़ का पानी तेज रफ्तार के साथ आ पहुँचा। पानी छूकर जल्दी में उन्होंने इधर-उधर देखा, तब तक पानी का तल घुटने तक आ चुका था। अकबकाहट में उन्होंने अविलम्ब बगल के पेड़ पर शरण ले ली। पानी निरन्तर बढ़ता ही चला जा रहा था। जब पेड़ पर चढ़ चुके, तब ख्याल आया कि यह ता बेर का पेड़ है। उनकी त्वचा कांटो से जहा-तहां बुरी तरह छिल गयी थी। अब ऊपर वह जिधर भी जरा-सा हिलते, कांटे चुभ

जाते। बढ़ते-बढ़ते पानी इतना हो गया कि वृक्ष का केवल ऊपरी हिस्सा ही बचा। बाकी पानी ही पानी। माधो चाचा बुरी तरह फंस चुके थे। तैरना-बैरना तो जानते नहीं थे कि तैरकर किनारे तक आ सकें।

शाम धिर चली थी। पानी के बढ़ने की गति अब धीमी पड़ गई थी। किनारे से बाढ़ देखते बच्चों ने जब पहचान लिया बेर के पेड़ पर माधो चाचा ही असहाय हो टंगे हुए हैं—तो आदत के मुताबिक सभी ने उन्हें चिढ़ाना शुरू कर दिया। हमेशा की तरह वह भी गुस्से में उसी तरह गालियां बके जा रहे थे—जैसे कुछ हुआ ही न हो।

इधर सुरेश बाबू ने देखा कि माधो देर से गायब हैं, तो वह शंकाकुल हो उठे। प्रदर्शन की समीप आती तारीख के कारण उन्हें यह चिन्ता सताने लगी थी कि कहीं माधो गायब हो जाएगा, तो वस्त्र तैयार कैसे होंगे। प्रदर्शन में आंदोलनकारियों के लिए खादी के वस्त्र अत्यावश्यक थे। वह इसी कशमकश में डूबने-उत-

राने लगे। पेशोपेश के कारण जब तनाव अधिक बढ़ गया तो बरामदे में ही चहलकदमी करने लगे। तभी उनकी दृष्टि तनी अलगनी पर टंगे बंडी-कुर्तों पर जा अटकी। खैर, पैतालीस-सैतालीस बंडी-कुर्तों तो तैयार कर दिए हैं उसने। उन्होंने संतोष की सांस ली जैसे कोहरे में से एक किरण फूटी हो—उन्हें तब वैसा ही कुछ लगा।

तभी न जाने क्या सोचकर उन्होंने एक बंडी और एक कुर्ता अलगनी से उतारकर देखना चाहा कि तैयार तो हैं न ये पोशाक। यह देखकर वह सन्न रह गए—उनमें पॉकेट की जगह अभी खाली थी, काज-बटन भी नदारद। उनका माथा ठनका, कहीं सारे टंगे वस्त्र भी...और यह सोचते ही वह कांप उठे। बिजली की-सी गति से एक-एक कर सारे टंगे वस्त्र देख डाले। सारे वस्त्र उसी तरह...

सम्पादक : 'पलामूदर्शन' एवं 'साम्प्रत', श्री द्वारिकापुरी,
नावाटोली, डालतनगंज- 822101

(पृष्ठ 15 का शेष)

जनबोधी नवगीत' विश्वरंजन का 'नवगीत में गृहस्थ जीवन की मानसिकता', डॉ. सुधा गुप्ता का 'जनचेतना से गुजरते नवगीत', उषा कोठारी का 'नवगीत की भाषा' तथा सुरेश भाई का 'बहुमुखी नवगीत : अनेकान्त आयाम'। इन लेखों में नवगीत की संवेदना एवं शिल्प पर गम्भीरतापूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आलोचकों के कुछ निष्कर्षों से सहमत होना जरूरी नहीं है, परन्तु उनके विवेचन की ईमानदारी पर सन्देह नहीं किया जा सकता। नवगीत के पाठकों एवं अध्ययताओं को यह अंक अवश्य देखना चाहिए।

अन्त में 'सनीचर'-16 (प्रकाशक-सम्पादक-ललित कुमार शर्मा 'ललित', सौजन्य सम्पादक-डॉ. भानुशंकर मेहता, औराई, वाराणसी-221301) के 'नाटक एवं रंगमंच विशेषांक 84' का उल्लेख करना चाहूंगा। लघु पत्रिकाएं अपने सीमित साधनों के बावजूद किस प्रकार विशेषांकों के रूप में स्थायी महत्व की सामग्री दे रही हैं, इस अंक को देखकर इसका सहज ज्ञान हो सकता है। यह अंक नाटक और रंगमंच के स्वीकृत विशेषज्ञ डा. भानुशंकर मेहता ने सम्पादित किया है। डॉ. मेहता को लेख प्राप्त करने में जो निराशा हुई, हम उसकी चर्चा नहीं करेंगे। हम तो उनके इस प्रयास की प्रशंसा करेंगे कि डॉ. विष्णुकान्त शास्त्री, डॉ. अज्ञात, देवीलाल सागर, विनोद रस्तोगी, नेमीचंद्र जैन, डॉ. शरद नागर आदि प्रसिद्ध विद्वानों के लेखों को एकत्र करने में सफल हुए। अंक में 'विविध लेख' शीर्षक से 12 लेख, 'लोकनाट्य: विविध शैलियां' शीर्षक से 17, 'तकनीक' शीर्षक से 3 लेख हैं। नाटक और रंगमंच से सम्बन्धित कुल 32 लेख हैं,

जिनमें मूल्यवान सामग्री विद्यमान है। निश्चय ही इस प्रकार के प्रयासों की प्रशंसा की जानी चाहिए तथा प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। हिन्दी की लघु पत्रिकाओं के इतिहास में ऐसे ही विशेषांक काफी समय तक याद किये जाते रहेंगे। वैसे यह पत्रिका प्रगतिशील लेखकों की पत्रिका है, परन्तु उन्होंने 'जरूरी साहित्यिक खबर' शीर्षक लेख में अवसरवादी, प्रतिक्रियावादी चरित्रहीन प्रगतिशीलों-नक्सलियों को नंगा करने में संकोच नहीं किया है। इस तटस्थता की प्रशंसा की जानी चाहिए। □

ए-98, अशोक बिहार, फेज प्रथम, दिल्ली-110052

बेसुर में तू गा

—रतीलाल शाहीन

ढोल-मजीरे

छोड़ मदारी

आ।

कबिरा-बानी

गा।

मन-मथुरा

दिल द्वारिका

अब नहीं रहे।

युग-द्रष्टा

आंखों में

मोती-बिन्द भरे !

खेल-तमाशे

छाड़ !

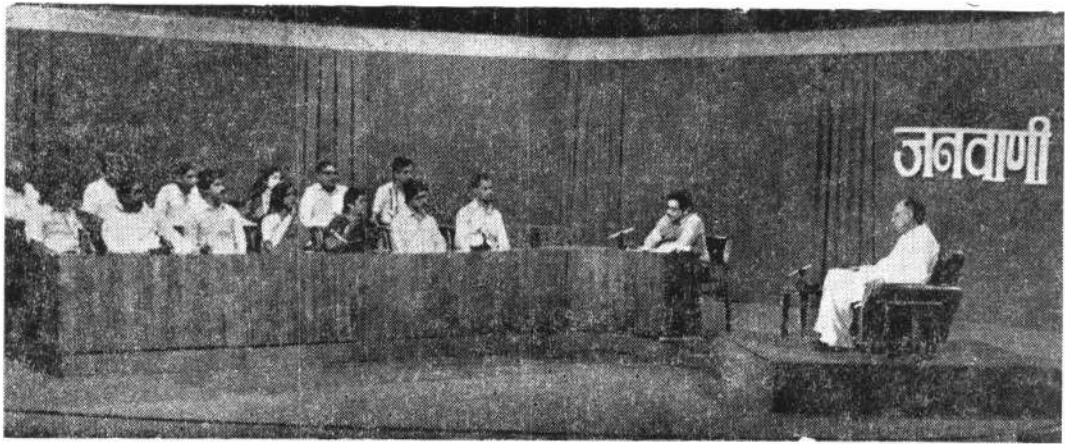
मत मुर-छंदों में

जा !

बेसुर में तू

गा।

37, नवपाड़ा, बान्दरा (पूर्व), बम्बई-400051



जनवाणी तथा मंत्रीवाणी का संगम

□ शंकर भट्ट

सिलसिला ही कुछ ऐसा बन गया है। जनता और शासन के बीच में विचारों, जानकारी तथा प्रतिक्रियाओं का जो निरन्तर विनिमय होना चाहिए वह हो नहीं रहा है। चुनाव आंदोलन जोरों पर होता है तब प्रत्याशी लोगों के सामने आते हैं। फिर सफल उम्मीदवार अगले पांच साल के लिए 'राम-राम' करके दिल्ली या अपने राज्य की राजधानी की ओर प्रस्थान कर देते हैं। हां, यदि आप उनके 'करकमलों' द्वारा उद्घाटन का कोई आयोजन करें, मालाएं मंगवा लें तथा भाषण का मंच खड़ा करें तब तो मंत्रीजी या संसद अथवा विधान सभा सदस्य को चंद क्षणों के लिए आपके बीच आने की फुर्सत मिल जाती है।

वास्तव में, लोकतंत्र में ऐसा होना नहीं चाहिए। हमारा जनतांत्रिक गणराज्य तो प्रौढ़ मताधिकार पर आधारित है जिसमें लोगों का शासन के विविध पहलुओं के साथ जुड़ जाने, सरकारी कार्यों में हाथ बंटाने, निर्णय लेने में योगदान देने आदि का पर्याप्त महत्व है। पीपुल्स पार्टी सीपेशन, अर्थात् शासन के कार्यों में जनता का योगदान जनतंत्र में आवश्यक माना जाता है।

उसके लिए सर्वप्रथम तो जनता और शासक, यानी जनता के प्रतिनिधियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान समय-समय पर होता रहना चाहिए। हाल ही में, दूरदर्शन ने अपने कार्यक्रमों का एक नया ढांचा तैयार किया जिसमें यह काम की बात ध्यान में रखी गयी। एक माने में, इस ढांचे के केन्द्रस्थान पर एक अनोखा कार्यक्रम 'जनवाणी' है जो, हर पखवाड़े में एक बार प्रसारित होता है।

इस कार्यक्रम में आम जनता के बारह-चौदह व्यक्ति केंद्रीय मंत्रिमंडल के एक सदस्य के साथ बैठक कर उनके मंत्रालय की

कार्यवाही का विहंगावलोकन एवं विश्लेषण करते हैं। अपनी शिकायतें, आलोचनाएं, टिप्पणियां, सुझाव, प्रस्ताव आदि मंत्रीजी को बहुत स्पष्ट शब्दों में सुनाते हैं और उनसे जवाब-तलब करते हैं। यह चुने हुए दर्शक संबद्ध मंत्रालय की नीतियों तथा उनके कार्यान्वयन के बारे में अपने विचार मंत्री के सामने निःसंकोच रखते हैं, जिन पर मंत्री अपनी प्रतिक्रिया तत्काल देते हैं।

जनता और शासन को इस प्रकार आमने-सामने लाकर दूरदर्शन ने हमारे लोकतंत्र की एक अपूर्णता को दूर करने की चेष्टा की है।

'जनवाणी' कार्यक्रम की घोषणा होते ही दिल्ली दूरदर्शन को देश के कोने-कोने से हजारों की संख्या में दर्शकों की चिट्ठियां मिलनी शुरू हुईं। दर्शकों ने अपने विचार, अपने प्रश्न लिख कर भेजे और अपने ही खर्च पर कार्यक्रम में भाग लेने के लिए दिल्ली पहुंचने की तत्परता दिखाई। 'जनवाणी' के प्रथम कार्यक्रम के लिए दूरदर्शन ने विषय भी ऐसा चुना था जिसमें गहरी जनरुचि का होना स्वाभाविक था। विषय था—सार्वजनिक वितरण प्रणाली अर्थात् खाद्यान्न, चीनी तथा मिट्टी के तेल जैसी आवश्यक वस्तुओं का राशन। इसमें भला कौन दिलचस्पी नहीं रखता होगा।

कार्यक्रम की घोषणा और उसके प्रसारण में बहुत दिनों का अंतर नहीं था। फिर भी हजारों दर्शकों ने पत्र लिखे। उनकी छंटनी हुई, वर्गीकरण तथा विश्लेषण हुआ और शीघ्र ही कार्यक्रम में भाग लेने वाले दर्शकों का चयन किया गया। ध्यान यह रखा गया कि देश के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोगों को कार्यक्रम में शामिल किया जाय, और साथ-साथ उनके प्रश्नों में विविधता हो ताकि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अलग-अलग



कार्यक्रम के निर्माता श्री कुबेरदत्त दर्शकों के साथ

पहलुओं पर सुचारु रूप से बातचीत हो सके। चुने हुए दर्शक बातचीत की न्यूनतम क्षमता रखते हों, इसका भी ध्यान रखा गया।

दर्शकों को तार दे कर दिल्ली आने की सूचना दी गई। दिल्ली पहुंचने पर उनको यह जानकारी प्रसन्नता हुई कि दूसरे दरजे का आने-जाने का रेल भाड़ा तथा दिल्ली में दो दिन ठहरने का उचित भत्ता भी उनको दूरदर्शन से प्राप्त होगा। 'जनवाणी' कार्यक्रम के निर्माता श्री कुबेर दत्त तथा केन्द्र निदेशक, श्री शिव शर्मा ने प्रश्न पूछने वाले दर्शकों का स्वागत किया और उन्हें दूरदर्शन स्टूडियो के नियमों से अवगत कराया।

प्रश्नों के बारे में कोई पाबन्दी नहीं थी, न ही इन दर्शकों ने खाद्य मंत्री, राव वीरेन्द्र सिंह के साथ अपनी बातचीत में अपने आपको किसी प्रकार से नियंत्रित समझा। मंत्री और प्रश्नकर्ताओं—दोनों पक्षों को मालूम था कि लाखों करोड़ों दर्शक उनकी बातचीत बड़े ध्यान से सुन रहे हैं। जनता की अनेक प्रकार की कठिनाइयां मंत्री जी के सामने रखी गई। कुछ दर्शकों ने तो राशन में मिलने वाली शक्कर के नमूने भी कार्यक्रम में प्रदर्शित किए। राव वीरेन्द्र सिंह ने प्रत्येक प्रश्न का विस्तार के साथ उत्तर दिया और स्वयं वितरण प्रणाली में तो नहीं, परंतु उसके अमल में खामियां होने की बात स्वीकार की।

'जनवाणी' के इस प्रथम कार्यक्रम में भाग लेने के लिए दूरदर्शन के दिल्ली केन्द्र को 5,660 पत्र मिले। पत्रों को छांटने का काम दर्शक अनुसंधान विभाग के कर्मचारियों ने उत्साह के साथ किया ताकि इस नवीन प्रयोग को सफल बनाया जा सके। दूसरा कार्यक्रम कृषि की सुविधाओं के विषय में था। इस बार पत्रों की संख्या में गिरावट आई। केवल 1,145 पत्र दूरदर्शन को प्राप्त हुए।

यह कार्यक्रम था तो किसानों के लिए, परन्तु उनमें से कम ही लोग कार्यक्रम का लाभ उठाने के लिए आगे आए। दूरदर्शन का जाल बहुत फैला हुआ है और 180 केन्द्र एवं ट्रांसमीटर

काम कर रहे हैं, पर यह जाल अभी गांवों तक उतना नहीं फैल सका है जितना नगरों तथा छोटे-छोटे कस्बों में। यह किसानों की अभिरुचि की अल्पता का एक कारण हो सकता है। दूसरा, महत्व का कारण यह हो सकता है कि मार्च के महीने में जब यह कार्यक्रम प्रसारित हुआ किसान रबी की फसल की कटाई में या उसकी तैयारी में व्यस्त थे। एक प्रमुख कारण शायद यह भी हो कि हमारे अधिकतर किसान पत्राचार में इतने कुशल नहीं हैं कि ऐसे कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए दूरदर्शन को पत्र लिखें।

जैसा भी हो, इस 'जनवाणी' कार्यक्रम में अधिकतर 'जन' सम्पन्न एवं आधुनिक किसान थे। कार्यक्रम में यदि कोई पगड़ी पहने हुए था तो वह थे कृषि मंत्री श्री बूटा सिंह। उन्हें किसान नहीं कहा जा सकता। फिर भी, कार्यक्रम रोचक था और किसानों की कुछ समस्याएं मंत्री जी के सामने आईं।

परन्तु, जब रेल यात्रा की सुविधाओं से संबंधित तीसरा कार्यक्रम घोषित हुआ तो दूरदर्शन के कार्यालय में पत्रों के ढेर लग गये। कार्यक्रम के प्रसारण के एक सप्ताह पूर्व जब चिट्ठियां पहुंचने की अवधि समाप्त हुई तब दूरदर्शन ने देखा कि पत्रों की संख्या इस बार 13,000 पर पहुंच चुकी है। राशन की भांति रेलों से जनता का घनिष्ठ संबंध है। चुने गए दर्शकों ने रेल यात्रियों की कठिनाइयां तथा परेशानियां को रेल मंत्री, श्री बंसी-लाल के संमुख स्पष्ट शब्दों में रखा।

तीनों कार्यक्रमों से देखने वालों ने महसूस किया कि भारत का लोकतंत्र मात्र पंचवर्षीय चुनावों में अपने मताधिकार के उपयोग तक सीमित नहीं है। अवसर मिले तो जनसाधारण भी सरकार के उच्च पद पर बैठे मंत्रियों के साथ बैठ कर अपनी कठिनाइयां सुनाने में रंचमात्र संकोच का अनुभव नहीं करता। आलोचना करने में दर्शकों को किसी प्रकार की हिचक नहीं हुई। जनता को जो सहना पड़ता है उसे वास्तविक पर विवेकपूर्ण ढंग से सभी कार्यक्रमों में बयान किया गया।

इसके साथ-साथ बहुत से दर्शकों ने यह भी नोट किया कि



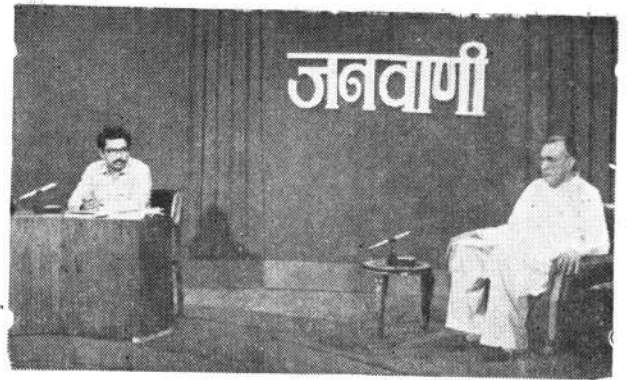
दर्शकों के पत्रों की छंटनी

मंत्रीगण दूरदर्शन के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत इस 'जनवाणी' कार्यक्रम में उत्साह से भाग ले रहे हैं। वह जनता की आवाज ध्यान और आदर से सुन लेते हैं तथा उनकी कठिनाइयाँ दूर करने का आश्वासन भी देते हैं। कई बार आलोचना जब बहुत कड़ी प्रतीत हुई तब मंत्री नाराज तो दिखाई दिए, परन्तु उन प्रश्नों का भी उन्होंने संतोषजनक उत्तर देने की चेष्टा की।

इस कार्यक्रम का आयोजन करके दूरदर्शन ने एक नया कदम उठाया है। वैसे तो सात-आठ वर्ष पूर्व 'आमने-सामने' नामक एक कार्यक्रम दूरदर्शन पर चला था। इस कार्यक्रम में भी सम्बद्ध मंत्री या उच्च अधिकारी को कुछ दर्शकों के सामने लाया जाता था। परन्तु दर्शकों का चयन दिल्ली तथा उसके उप-नगरों तक ही सीमित रहा और उनके चयन के लिए कोई उचित व्यवस्था नहीं की गई। लेकिन, तब से अब स्थिति बहुत बदल चुकी है। अब तो दूरदर्शन के केन्द्रों तथा ट्रांसमीटरों का जाल बहुत विस्तृत हो चुका है जिसके जरिये यह देश के कोने-कोने तक पहुँच पाता है। केन्द्रीय मंत्रियों का उत्तरदायित्व तो पूरे राष्ट्र के प्रति है। अतः इस कार्यक्रम में राष्ट्र के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से चुने गये 'जन' की वाणी और केन्द्रीय मंत्रियों की वाणी का समागम हमें देखने को मिलता है।

जैसे-जैसे कार्यक्रम आगे बढ़ेगा, उसमें सुधार की आवश्यकता हांगी और इस दिशा में ध्यान देना जरूरी होगा। समय की पाबंदी के कारण या कतिपय अन्य कारणों से मंत्रियों के उत्तर पर निश्चित तौर पर कोई मत व्यक्त करना अभी सम्भव नहीं है। परन्तु बातचीत को सार्थक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि दर्शकों को प्रतिप्रश्न करने का भी अवसर प्राप्त हो। दर्शकों के चयन में अधिक सावधानी बरतने की जरूरत है।

प्रश्न उठता है—क्या यह कार्यक्रम दूरदर्शन के अन्य कार्यक्रमों की भांति मात्र एक कार्यक्रम बन कर रह जायेगा या इसका सरकार के कार्यों पर, मंत्रालयों की नीतियों तथा उनके कार्यान्वयन पर भी प्रभाव पड़ेगा? इसके संतोषजनक उत्तर के लिए हमें और प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।



रेल मंत्री श्री बंसीलाल कार्यक्रम के संचालक श्री विनोद दुआ के साथ

सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर प्रसारित 'जनवाणी' के कुछ ही दिनों बाद हरियाणा के सोनीपत जिले के संबंधित अधिकारी दूरदर्शन केन्द्र में गये और अपने क्षेत्र के विषय में क्या कहा गया उनका पूरा व्यौरा प्राप्त किया।

प्रत्येक कार्यक्रम के प्रसारण के पश्चात् दूरदर्शन के अधिकारी दर्शकों की तमाम चिट्ठियों के बंडल उन्हें संबंधित मंत्रालय को भेज देते हैं—इस आशा के साथ कि वहाँ के अधिकारीगण मंत्री से आदेश प्राप्त करके शिकायतें और सुझावों पर पूरा ध्यान देंगे।

स्पष्ट है कि प्रत्येक कार्यक्रम उतना रोचक नहीं हो सकता। कार्यक्रम की रोचकता में उतार-चढ़ाव आता रहेगा। पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है 'जनवाणी' एक ऐसा कार्यक्रम है जो दर्शकों के दिलों तक पहुँचता है। यह मनोरंजन के उन सभी कार्यक्रमों से मुकाबला कर सकता है जिनकी दर्शक बेताबी से प्रतीक्षा करते हैं।

कारण? इसमें न केवल दूरदर्शन के दर्शक भाग ले रहे हैं, किंतु भारत की जनता भी भाग ले रही है। □

5/186, सुन्दर बिहार, नई दिल्ली-110041

हवाओं के पंख

राजेन्द्र गौतम

धूप के कुछ फूल धरता

आ गया मौसम

धुंध में लिपटी

नदी की देह पर

रखती अनुष्टुप

लेखनी किरणें

दूब की छुत्रने किनारों की त्वचा में

फिर सिहरनों-सी

लगी तिरनें

लाल चन्दन धूल भरता

आ गया मौसम

रागिनी जो चीड़-वन में

कल ठिठुरती

महकती अब सिवानों में

फिर हवाओं में उगे हैं

पंख रेशम के

गगन नापा उड़ानों ने

एक आदिम भूल करता

आ गया मौसम,

ताल की

फैली हथेली पर

चुटकियां भर

भोर ने फिर गंध भर दी है

गंदुमी होती दिशाओं ने

हिरणियों के गात में

फिर गमक भर दी है

दृष्टियां अनुकूल करता

आ गया मौसम।

25-डी, पश्चिमी ज्योतिनगर नई दिल्ली



अपना-अपना सुख

□ डा. शीतांशु भारद्वाज

रमोती गौशाला की ओर मुड़ी तो अचानक ही उन्हें हिचकियां लगने लगीं। घर के जंगले पर बैठे-बैठे ही वे दूर नैनी-हांडा की पहाड़ियों के ऊपर डूबते हुए सूर्य पिंड को देखते जा रहे थे। तभी हाथ में दूध का डोल लिये हुई वहां उनकी पत्नी आ गई थी। दोनों जने बीते हुए दिनों के साथ-साथ पहाड़ सरीखी शेष जिंदगी पर बतियाने लगे थे। आने वाला भविष्य उन्हें चौमासे के कुहासे के मार्निद लग रहा था।

—क्यों हो ! रमोती ने उनकी ओर एक अहम प्रश्न उछाल दिया था, औरत जात को सबसे बड़ा सुख कब मिलता है ?

—सुख ? अनपढ़ पत्नी के उस दार्शनिक प्रश्न ने उन्हें चौंका दिया था।

—हां। रमोती कोयले के टुकड़े से जंगले के फर्श पर आड़ी-तिरछी रेखाएं खींचने लगी थी।

उनसे पत्नी के उस प्रश्न का उत्तर देते नहीं बन पा रहा था। ऐसी बात भी नहीं थी कि वे रमोती को शारीरिक-भौतिक सुख-सुविधाएं न दे पाये हों। फिर भी, सिर खुजलाते

हुए उन्होंने कहा था, सुख तो हमारे मन का हुआ करता है रमोती।

—वही तो। रमोती ने भी उन्हीं का समर्थन कर दिया था, मैं भी तो यही पूछ रही हूं कि औरत को संसार का सबसे बड़ा सुख किस समय मिलता है ?

पत्नी के प्रश्न पर वे पुनर्विचार करने लगे थे। रमोती भी तो जीवन में पहली ही बार उनसे ऐसा अटपटा प्रश्न पूछ रही थी। मस्तिष्क पर जोर देने पर भी उनसे कोई युक्तिसंगत उत्तर देते नहीं बन पा रहा था। बेचारे वहीं बगलें भांकने लगे थे।

—मैं दूध दुहा लाती हूं। रमोती ने गौशाला की ओर मुड़ते हुए कहा था, तब तक तुम जरा सोचो तो।

हिच-किच करते हुए वे अब भी उसी प्रकार हिचकियों से व्याकुल हुए जा रहे थे। उन्हें याद हो आया कि अपनों को याद कर लेने पर हिचकियां स्वयमेव ही बंद हो जाया करती हैं। किन्तु इस विचार मात्र से ही उनके चेहरे पर उदासी घिरने लगी। इतने बड़े संसार में उनका कोई भी तो अपना नहीं है। एक वे हैं और एक उनकी सहधर्मिणी रमोती।

—अरे ! उन्हें हिचकियां लेते देख रमोती चिंतित हो आई। उसने दूध का डोल वहीं नीचे रख दिया।

—न जाने कौन याद करने लगा है ! वे पत्नी को देखने लगे।

—मैं अभी आई। कहकर रमोती दूध का डोल लेकर अंदर चल दी। हिचकियों से ध्यान बंटाने के लिये वे नीचे के आम-वृक्ष को देखने लगे। कभी उस पर कितने आम लगा करते थे। किन्तु अब तो वह बेचारा फल देने योग्य भी नहीं रहा। उस पर बौर तो आते हैं किन्तु फूलने-फलने से पूर्व ही झड़ जाया करते हैं। वे पेड़-पौधों के साथ औरत-जात की तुलना करने लगे। दोनों ही तो अपने-अपने समय पर फल-फूल दिया करते हैं। हां कुछ अपवाद तो हर क्षेत्र में ही हुआ करते हैं। वे रमोती को क्या कहें। बिना फल की अबला।

—लो, एक ही सांस में पी जाओ। रमोती के हाथ में न जाने किन-किन जड़ी-बूटियों का काढ़ा था।

उन्होंने पत्नी के हाथ से कटोरी ले ली। उसे वे एक ही घूंट में पी गये। कुछ पलों के बाद हिचकियां धीरे-धीरे बंद होने लगीं। रमोती वहीं उनके पास ही बैठ गई।

सांभ भुरने लगी थी। गांव-जवार में लोग-बाग रात के भोजन की जुगाड़ करने लगे थे। नीचे के घरों की चिमनियों से धुआं उगलने लगा था।

—सोचा कुछ ? रमोती ने उन्हें अपने प्रश्न की याद दिलाई।

—अरे हां। उन्हें पत्नी के अनुत्तरित प्रश्न की याद हो आई। वे फिस्स-से हंस दिये, पहले घर में दीया-बाती तो जला लो।

—ठंड बढ़ने लगी है। रमोती उनके पास से उठ खड़ी हुई, तुम भी तो अंदर चलो न।

जंगले से वे दोनों अंदर चल दिये। रमोती ने लालटेन जलाकर उसे बाहर बरामदे में एक ओर ताक पर रख दिया। वे बरामदे में पड़ी चारपाई पर बैठ गये।

—दरअसल, मुझसे तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देते नहीं बन पा रहा है। वे वहीं खड़ी प्रौढ़ा पत्नी को नख से सिख तक देखने लगे।

—हार गये ? रमोती ने आंखें नचाकर पूछा,

—हां। उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली, मैं फिर से हार गया हूं।

—तो सुनो। रमोती उन्हीं की बगल में बैठ गई। अगले ही क्षण उसने अपना सिर पति के कंध पर टिका दिया, औरत जात को सबसे बड़ा सुख अपनी संतान को स्तन-पान करवाने में मिलता है।

पत्नी के कथन ने उनके मन-प्राणों को बुरी तरह से झक-

झोर कर रख दिया। अंदर कहीं गहरी टीस-सी उठी। उन्होंने नोट किया कि रमोती की आंखों में नमी भर आई है। उसके कहे पर वे क्या टिप्पणी करते! वे भी उदास होने लगे।

—अच्छा छोड़ो। रमोती ने उनकी सारी उदासी पोंछ ली, क्या खाओगे ?

—मुझे भूख नहीं है। उन्होंने कहा, तुम अपने लिये बना लो।

—रात के बखत यों बिन खाये रहना ठीक नहीं होता। रमोती के स्वर में मनुहार थी, दो रोटियां सेंक लेती हूं।

—सच्ची रमोती, मुझे बिलकुल भी भूख नहीं है। उन्होंने पत्नी के हाथ अपने हाथों में ले लिये।

—दूध तो लोगे न ?

—हां, ले लूंगा।

—ठीक है। रमोती हाथ छुड़ा कर बोली, उसी के साथ दो-चार बिस्कुट कुतर लेना।

रमोती बरामदे से अंदर चल दी। चटपट उसने चूल्हा सुलगा लिया। उसने उस पर दूध की पतीली चढ़ा दी।

बरामदे में बैठे हुए लालटेन के उजाले में वे अपने जीर्ण हो आए मकान को देखने लगे। मिट्टी-गोबर से लिपी-पुती दीवारों पर स्थान-स्थान से दरारें पड़ने लगी थीं। छत की शहतीरों को भी दीमक चाटने लगी थी। उनकी आंखों के आगे बीते हुए दिन चांदनी की उजास की तरह से उजागर होने लगे।

समय कितना बलवान हुआ करता है। वही जसपूर गांव है, वही उनका पुस्तैनी मकान है। किन्तु काल उनके भरे-पूरे परिवार को खंड-खंडों में लीलता ही चला गया। संक्रांति पर ब्याह-शादियों के अवसर पर उनके घर-आंगन में कितनी चहल-पहल रहा करती थी। दो-दो दीदियां भानजे-भानजियों के साथ मायके आई हुई होतीं। तब उनके परिवार में बड़े भाई पनदा, जौमती भाभी और उनके बच्चे हुआ करते। मर्द-मानुष जहां तंबाकू फूंकते हुए घर-गृहस्थी की गुत्थियां सुलभाया करते वहीं आंगन में बच्चों की उन्मुक्त धमा-चौकड़ी मची रहती। तब रमोती उस घर में नई-नवेली दुल्हन हुआ करती। काल उनके परिवार को बिखेरता ही चला गया। उन्होंने कोटा-भाबर की ओर थोड़ी-सी खेती योग्य जमीन ले ली थी। पनदा भाभी और बच्चों के साथ वहीं रहने लगे थे। रमोती के साथ दिल्ली आकर वे नौकरी करने लगे थे। दिन बीतते गये। धीरे-धीरे उनके परिवार को राहु ग्रसने लगा।

पहले बड़ी दीदी की मृत्यु हुई, फिर छोटी दीदी को कैंसर उभर आया। देखते-ही-देखते वे ईश्वर को प्यारी हो गई। दो बरस बाद पनदा भी एक सड़क दुर्घटना में सपरिवार चल बसे। वे कोटा-भाबर से पहाड़ लौट रहे थे। चिमठाखाल के समीप ही बस सैंकड़ों फिट गहरे गड्ढे में जा गिरी थी। उस दुर्घटना में सारे यात्री मारे गये थे।

मां-बाप के ऊपर तो जैसे बिजली ही गिर पड़ी। मां उस सदमें को नहीं भेल पाई। हृदय-गति रुक जाने से वे परलोक सिधार गईं। पिताजी को भी पाप भोगना था। वे रह गये। तार पाते ही वे पत्नी के साथ घर आ गये। उन्होंने पिताजी को अपने साथ दिल्ली चलने को कहा।

—पगला कहीं का ! पिताजी आकाश ताकते हुए बोले थे, मैं अपनी धरती से कट कर कहीं भी नहीं जाऊंगा। यहीं की मिट्टी में पैदा हूं, यहीं मिलूंगा भी।

गर्दन लटकाए हुए वे अपने काम पर आ गये थे।

अब तो उन्हें अपनी स्थिति “वंश में बनाड़”—सी ही लगा करती है। बरसों बीत जाने पर भी जब रमोती के पांव भारी नहीं हो पाये तो उन्हें अंदर-ही-अंदर घुन चाटने लगा। उनसे अधिक घुन पिताजी को चाटता रहा था। लंगड़े वर्तमान और अंधे भविष्य की चिंता करते-करते वे एकदम ही खोखले हो गए। एक दिन उन्होंने अपने माथे पर उल्टा हाथ मारा था। उनका कारुणिक स्वर था, “हाइ रे फूटे कपान्त, अब इस वंश का क्या होगा ?”

...और, एक दिन पिताजी का माटी का चोला, माटी में ही मिल गया। उनका अंतिम संस्कार कर, खेत-खलिहानों को चचेरे भाइयों को सौंप कर वे रमोती के साथ दिल्ली आ गये थे। फिर वही सरकारी नौकरी और उसमें घुटती हुई उनकी तन्हाभरी जिंदगी ! उन्होंने नामी-से-नामी डॉक्टरों से अपनी जांच-पड़ताल करवाई थी। उनमें कोई नुक्सान था। खोट रमोती में ही था।

—क्यों हो। रमोती जब-तब उन्हें दूसरा विवाह करने के लिए उकसाती रहती, तुम अपना भला क्यों नहीं कर लेते ? आखिर वंश-बेल भी तो...

—हंइ। वे मुस्करा दिये थे, बजर पड़े उस वंश-बेल पर...

रमोती ने उन्हें क्या-कुछ नहीं दिया। वे उसकी छाती पर मूंग दलने की तो कल्पना तक नहीं कर सकते थे। पत्नी जब भी उन्हें कुरेदती, वे कह दिया करते, छोड़ो भी रमोती, जरूरी तो नहीं कि वंश-बेल फैलेगी ही। वह मुरझा भी तो सकती है न।

समय सरकता ही गया। उनकी सेवा-निवृत्ति की अवधि भी समीप आती गई। एक दिन वे यों ही भविष्य को लेकर चिंतित थे। रमोती वहीं पास में बैठी हुई थी। वह उन्हें सवालिया निगाहों से देखने लगी।

—बुढ़ापे की लाठी पर सोच रहा हूं। उनके माथे पर ढेर सारो सलवटे उभर आई थीं। उन्होंने गहरा उच्छवास छोड़ा था, रिटायरमेंट के बाद क्या होगा ?

—हाइ ! इसमें सोचना क्या ठहरा ? रमोती ने उनके माथे की तमाम सलवटें पोंछ डाली थी, अपने पहाड़ चले गये।

—पहाड़ ! वे ऐसे चौंके थे जैसे कि उस शब्द को वे पहली बार सुन रहे हों। उन्होंने गहरी सांस ली थी, अब वहां अपना है भी क्या जो...

—दो खेत तो हैं। रमोती मुस्करा गई थी।

पिछले बरस सरकारी सेवा से मुक्त होकर वे गांव आ गये थे। यहां आकर “जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी” लोकोक्ति को वे निस्सार अनुभव करने लगे थे। उनके बचपन के संगी-साथी भी मर-खप गये थे। नई पीढ़ी के लिये वे और रमोती आज भी अजनबी ही हैं। भाई-बिरादरी वाले भी अब तक उन्हें भुला चुके थे। उन लोगों को सपने में भी आशा नहीं थी कि एक दिन वे अपनी जमीन से आ जुड़ेंगे।

—क्या सोचने लगे ? रमोती ने बरामदे में आकर उनकी तंद्रा भंग की। वह हाथ में दूध का गिलास लिये हुई थी।

—अम्, कुछ भी तो नहीं। वे सामान्य हो आये। पत्नी के हाथ से गिलास लेते हुए उन्होंने पूछा, अपने लिये नहीं लाई ?

—न, मन नहीं है। रमोती ने उन्हें बिस्कुट थमा दिये।

बिस्कुट कुतरते हुए वे दूध पीने लगे। रमोती वहीं नीचे बैठती हुई बोली, मुझे तो पिस्वा देवर की नयीत अच्छी नहीं लगती।

दूध का खाली गिलास पत्नी को थमाते हुए उन्होंने कहा, बनाड़ होता है न !

रमोती उनका मुंह ताकने लगी।

—बनाड़ को कोई भी तो नहीं पूछता। उनके ओठों पर फीका हास्य उभर आया।

उनका कथन रमोती के कलेजे पर नशतर-सा लगने लगा। बिरादरी वालों को वे दोनों फूटी आंख भी नहीं सुहाते। पिछले महीने प्रेमसिंह ने उनसे हजारों रुपये उधार मांगे थे। उतनी बड़ी रकम उनके पास कहां से आती। वे असमर्थता दिखलाने लगे थे, प्रेम भाई, हमारे पास इतनी बड़ी रकम कहां से आयेगी ? पेंशन के जो भी रुपये मिले हैं, वे भी इस हाथ आये उस हाथ गये।

प्रेमसिंह के मन में गांठ पड़ गई थी। अगले दिन रमोती गांव के सार्वजनिक नल पर पानी लेने गई हुई थी। वहां प्रेम सिंह गांव की बहू-बेटियों के साथ हंस बोल रहा था। गांव की किसी बहू का वहां पचास पैसे का सिक्का खो गया था। बहुत ढूंढने पर जब वह उसे नहीं मिला तो उसके मुंह से निकल पड़ा था, छोड़ो भी, कौन-सी धन माया है।

—हां बहू। प्रेमसिंह ने जैसे रमोती को सुनाते हुए टिप्पणी की थी, धन तो निपूतों को प्यारा हुआ करता है।

प्रेमसिंह की उस व्यंग्योक्ति ने रमोती का कलेजा छलनी कर दिया था। घर आकर उसने सारी बातें उन्हें बतला दी थीं।

वे मुस्कुरा कर ही रह गये थे।

आज सुबह भी तो प्रेमसिंह ने उन्हें कुछ ऐसी ही दिल जलाने वाली बातें सुनाई थीं। वह अपने आंगन में बैठा हुआ तंबाकू फूंक रहा था। उसी समय वहां हरकू लौहार का लड़का आ गया था। वह गांव के किसी नौकरीपेशा परिवार के खेतों को खा-कमा रहा था। किन्तु अब वे लोग उससे खेत न जोतने को कह रहे थे। प्रेमसिंह के पास वह उसी विषय पर सलाह-मशविरा लेने आया हुआ था।

—खेत न छोड़ना। प्रेमसिंह ने जैसे उन्हीं को सुनाते हुए कहा था, आजकल जमीन उसकी जो उसे जोते-बोये।

प्रेमसिंह की उस साम्यवादी चेतना ने उन्हें अंदर तक हिला दिया। हालांकि उनके खेतों को आज भी वही खा-कमा रहा है। कभी भी तो उन्होंने उससे जमीन के उन टुकड़ों की बात नहीं कही है। फिर भी, दिन-प्रति-दिन चचेरे भाई के लोभ का कुनवा बढ़ता ही जा रहा है।

—छोड़ो भी। रमोती कंधे पर हाथ रख कर मुस्कुरा दी, हाथी चलते रहते हैं, कुत्ते भौंकते रहते हैं।

रमोती के उस स्नेह-सिक्त ढांडस ने उनके रिसते हुए घाव पर जैसे मरहम का काम कर दिया। वे भी मुस्कुरा दिये समस्याओं के भ्रंशावातों के बीच रमोती की यह मुस्कान ही तो उन्हें जीवनी शक्ति देती आ रही है।

रात अधिक गहरी हो आई थी। रमोती अंदर कमरे में दो चारपाइयों पर बिस्तर बिछा चुकी थी। पत्नी के साथ वे भी सोने के लिए अंदर चल दिये। दोनों अपने-अपने बिछौनों पर लेट गये।

—दरवाजे पर सांकल लगा दी? रमोती ने करवट बदल कर पूछा।

—नहीं। उन्होंने जुम्हाई लेते हुए कहा, यहां क्या धरा है जो...

—सांकल लगा आओ। रमोती उन्हें समझाने लगी, गांव में सौ दाई-दुश्मन हुआ करते हैं।

बिस्तर से उठकर उन्होंने अन्दर से सांकल चढ़ा ली। उसके बाद वे लेट गये किन्तु उन्हें नींद नहीं आ रही थी। वैचारिक बवंडर उनके मन-प्राणों को भकभोरते आ रहे थे। लेटे-लेटे ही उन्होंने पत्नी से कहा, अब की तो मकान की भी मरम्मत करवानी होगी।

—हूं। रमोती को नींद आने लगी थी।

—मरम्मत बरसात से पहले-पहले नहीं की गई तो...। वे अपनी ही धुन में कहते गये, दीवारों पर भी दरारें पड़ गई हैं। लकड़ी को भी दीमक चाटने लगी है।

रमोती नींद में गहरे खरटे भरने लगी थी। खिड़की से छन-छन कर आती हुई चांदनी उसके गेहुएं चेहरों पर अठ-खेलियां कर रही थी। ऐसे में वे उसके चेहरे पर बीते हुए

दिनों की मधुर यादें ढूँढने लगे। धीरे-धीरे उन्हें भी नींद आने लगी।

सुबह सूर्योदय के समय उनकी नींद खुल गई। दोनों हथेलियों से आंखें मलकर उन्होंने बगल की चारपाई पर लेटी हुई पत्नी को देखा। खिड़की से आती हुई धूप उसके चेहरे पर बिछी हुई थी। किन्तु यह क्या? रमोती की आंखों से तो गंगा-यमुना बह रही है।

—क्यों? वे वहीं पत्नी की चारपाई पर आकर बैठ गये। धीरे से उन्होंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया, क्या हुआ?

—कुछ नहीं। रमोती का सुबकता हुआ स्वर था। वह ब्लॉउज के खुले बटनों को बंद करने लगी।

रमोती की मनःस्थिति को समझते हुए उन्हें देर नहीं लगी। लगा जैसे सपने में ही वह सारी रात संसार के सबसे बड़े सुख का अहसास करती रही हो। तभी तो वह अधखुले ब्लॉउज के बटन बंद कर रही थी।

—इस तरह कब तक घुलती रहेगी पगली? उनका हाथ पत्नी के सिर पर जा लगा।

रमोती के मातृत्व में जबर्दस्त उफान आ गया। पत्नी के कंधे पर सिर रख कर वह और भी फफकने लगी। ऐसे में उनसे भी तो नहीं रहा गया। अगले ही क्षण उन्होंने उसे अपने सीने से लगा लिया। कुछ क्षणों तक वे उसी सुख में डूबे रहे।

कमरे में धीरे-धीरे धूप की पीलिमा फैलती जा रही थी। पत्नी को उन्होंने अपने बाहुपाश से मुक्त कर लिया। उसके कंधे पर हाथ रखकर उन्होंने कहा, रमोती जानती है कि मुझे सबसे बड़ा सुख कब मिलता है?

रमोती उन्हें डबडबाई आंखों से देखने लगी। भोलेपन में उसने “ना” के अंदाज में सिर हिला दिया।

पत्नी के उस भोलेपन ने उन्हें जैसे निहाल कर दिया। उनका बायां हाथ पत्नी के कंधे पर जा लगा। दायां हाथ से वे उसके गालों पर ढरके हुए आंसुओं को पोंछने लगे। इसी में तो उन्हें सबसे बड़ा सुख मिला करता है। मौन किन्तु मुखर सुख। □

138. डी. विद्या विहार, पिलानी (राजस्थान), पिन-333031

नकल

चौराहे पर खड़े एक कुत्ते को

मैंने बेबजह एक जोर की लात मारी

‘कुई...!’ करता कुत्ता

दुम दबाए

पास की एक गली में भाग गया

सचमुच

इससे पहले मैं नहीं जानता था

कि अब कुत्ते भी आदमी की नकल करने लगे हैं।

प्रवीण परिमल,

सिन्हा भवन, रामधनपुर गया-823002



रंग बसंती के अनचाहे रंग

रंग बसंती (नाटक); लेखक : प्रताप सहगल; प्रकाशक : पराग प्रकाशन, विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-1984; मूल्य 20 रुपये; पृष्ठ संख्या-92

दिल्ली के साहित्यिक जगत में प्रताप सहगल एक परिचित लेखक के रूप में ज्ञात हैं। कविता और नाटक के क्षेत्र में उनकी कुछ रचनाएं प्रकाशित हुई हैं। उनके अनेक नाटक रेडियो पर प्रसारित हो चुके हैं।

‘रंग बसंती’ एक जीवनीपरक नाटक है जिसमें प्रताप सहगल ने इस शताब्दी के महान् क्रांतिकारी भगतसिंह के जन्म से लेकर मृत्यु तक की निम्न महत्वपूर्ण घटनाओं का संयोजन किया है—जन्म, नेशनल कॉलेज, साइमन कमीशन और लाला लाजपत राय पर लाठी-चार्ज, सांडर्स की हत्या, केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकना, मुकदमा, कारावास, अनशन और मृत्युदंड। इस नाटक का वस्तु-विन्यास भगतसिंह के जीवन की उल्लेखनीय घटनाओं का इतिहास है। घटनाओं के चयन में सतर्कता मिल जाएगी परन्तु जीवनी-पक्ष की रक्षा का मोह हटाया नहीं जा सकता। ऐसे नाटकों में मूल प्रश्न यह रहता है कि विभिन्न प्रसंगों, पात्रों को कैसे नाटकीय स्वरूप एवं व्यवहार प्रदान किया जाए। कारण स्पष्ट है, सारी स्थितियां पूर्व-निर्धारित हैं। काल-क्रम, घटना-क्रम और स्थान-क्रम के बंधन हैं। इस तरह सारी बुनावट एक पक्षीय होने लगती है। रंग बसंती में ऐसे कई दृश्य हैं। दृश्य एक, दो, चार, पांच, चौदह, बाईस, इसके प्रमाण हैं।

प्रताप सहगल ने भगतसिंह के जीवन के चार पहलुओं को उठाया है—एक, परिवार; दूसरा, अंग्रेजी साम्राज्यवादी शक्ति के विरुद्ध आंदोलन; तीसरा, दल के सदस्यों के अंतः संबंध; चौथा, कारावास में नई चेतना और दृष्टि का विकास। पारिवारिक धरातल पर केवल पिता के साथ टकराहट दिखाई है, मां और भावी पत्नी की नाटकीय संभावनाओं की कल्पना नहीं की गई। अंग्रेजों को केवल क्रूर दिखाया है, परन्तु उनकी क्रूरता के ऊपर बौद्धिकता का जामा रहा है। अध्ययन-मनन के कारण कारावास में नए भगतसिंह का उदय मिलता है, यहां केवल पुस्तकें मांगने-पढ़ने तक कोशिश हुई है। भगतसिंह-मुखदेव के व्यक्तिगत संबंधों में खिचाव रहा है जिसे दुर्गावती को लेकर और अंत में बयान को लेकर उपयुक्त नाटकीय

बुनावट दी गई है। यहां सहगल सफल रहे हैं।

इस नाटक की केन्द्रीय धुरी भगतसिंह का चरित्र है। कोशिश के बावजूद उसका रोमानी पक्ष प्रमुखता ले गया है। उनके समाजवादी विचार प्रस्तुत किए गए हैं परन्तु वे भी रोमानी शैली में। अदालत में दिया गया भगतसिंह का लंबा वक्तव्य वस्तुतः लेखक के दृष्टिकोण की स्पष्टता तथा रचनात्मक प्रखरता का मानदंड है। ढाई पृष्ठ के इस भाषण का पूर्वाद्ध कमजोर तथा उत्तरार्द्ध ठीक-ठिकाने स्तर का है। यह एक चुनौती थी जिसे सहगल सम्हाल नहीं पाए।

अभिव्यंजना के स्तर पर कई कठिनाइयां सामने आई हैं। पंजाबी और अंग्रेजी भाषा प्रयोग उपयुक्त वातावरण और चरित्रगत विश्वसनीयता के लिए एक सीमा तक उचित ठहराया जा सकता है परन्तु पूरे संवाद अंग्रेजी में रखना प्रेषणीयता की दृष्टि से बाधक है और अभिव्यंजना के आधारभूत प्रश्न को भी उठाता है। इससे अधिक चिंता का विषय है शब्द-चयन, वाक्य-रचना तथा संवाद-गठन की कमियां। मत-स्थापना करते हुए भगतसिंह पृ. 32 पर ‘इक्तसादी आजादी’, ‘आर्थिक मुक्ति’ ‘कान्सेप्ट’ शब्दों का सहारा लेता है, जो सही और सार्थक नहीं है। निम्न वाक्यों का विन्यास देखिये—(1) हम इस मंच पर अपने-अपने धर्म में सभी बुराइयों का डटकर विरोध करें-पृष्ठ 29 (2) मुड़ जाओ साइमन-पृष्ठ 36 (3) यह बेहोशी में और ज़रूम पर भी काम आती है-पृष्ठ 56। संवाद वक्तव्य-प्रधान हो गये हैं। दो-एक गीत अवश्य सजीव एवं संवेदनापूर्ण हैं जैसे—खून देश का जमता-जमता/करवट लेकर खोल उठा... परन्तु अधिकांश काव्य-खंड कविता की शर्तों को पूरा नहीं करते।

92 पृष्ठों के इस नाटक में 26 दृश्य हैं, कई दृश्य दो पृष्ठों के हैं। छोटे-छोटे प्रसंग हैं। लगभग 50 भूमिकाएं हैं जिनके लिए 30 अभिनेता चाहिए। रेल-गाड़ी और स्टेशन के दृश्य, सदस्यों से भरा असेम्बली हॉल, अदालत-मुकदमा, इन सबको दिखाना असंभव तो नहीं है परन्तु इन सबसे इतना तात्पर्य अवश्य निकलता है कि लेखक ने मंचन-कठिनाइयों के प्रति ध्यान नहीं दिया। ब्रेस्त-शैली का आश्रय लेने से एक सूत्रता लाई जा सकती है परन्तु इससे नाटकीयता नहीं आ सकती। असल में ‘रंग बसंती’ की परिकल्पना ध्वनि नाटक की हो गई है। अवधारणा और अभिव्यंजना के स्तर पर भी वह प्रभाव-सृष्टि नहीं हो पाई जिसकी भगतसिंह के जीवन से अपेक्षा रहती है।

— सत्येन्द्र कुमार तनेजा

8, हंसराज कालेज, टीचर्स फ्लैट्स दिल्ली-110007

एक आत्मीय विदेशी दृष्टि

‘स्मेकल की प्रतिनिधि कविताएं’ उनके पूर्व प्रकाशित काव्य-संग्रह ‘मेरी प्रीत तेरे गीत’ का ‘मिनी संस्करण’ है—पूर्ववर्ती काव्य-संग्रह की 108 कविताओं में से चुनी हुई

31 कविताओं का संकलन ।

चेकोस्लोवाकिया के हिंदी विद्वान डॉ. ओदोलेन स्मेकल की कविताओं की समझ के लिए इस तथ्य को हमेशा ध्यान में रखना होगा कि भारत और हिंदी उनके लिए अनिवार्य या अपरिहार्य अनुभव नहीं है—जो जन्म से ही उनकी रंगों में बह रहा हो—उनके अचेतन, अवचेतन पर छाया हो और इस तरह उनकी चेतन अभिव्यक्ति को भाव तथा भाषा दोनों स्तरों पर अनिवार्यतः प्रभावित करता हो। उसका अनुभव तो एक अभिभूत जिज्ञासु का अनुभव है, ह्वेनत्सांग या फाहियान जैसा अनुभव, इसलिए यह स्वाभाविक है कि भाव के स्तर पर न तो बहुत गहन

स्मेकल की प्रतिनिधि कविताएँ; कवि : आदोलेन स्मेकल;
प्रकाशन : श्री शांति कुंज प्रकाशन, ए-2014, मोरा मार्ग, राणा
प्रताप बाग, दिल्ली-110007; मूल्य : 25 रुपये; पृष्ठ संख्या : 64 ।

अनुभूतियाँ, उदासी, कुंठा, निराशा या 'सिनिंसिज्म' है न ही भाषा के स्तर पर प्रचलित शब्द और चालू मुहावरे। वह भारत के गौरव, मौसमों की विविधता से अभिभूत भी होता है और आर्थिक विपन्नता से खिन्न भी—लेकिन उसकी अभिव्यक्ति के स्वर सहज मानवीय करुणा, सहानुभूति तथा कौतूहल, जिज्ञासा से भरे 'फर्स्ट हैंड' अनुभव के रूप में हैं—आक्रोश, कुंठा या दार्शनिक व्याख्या के रूप में नहीं।

इसलिए स्मेकल की कविताओं की भावभूमि को पकड़ने से पहले आज की कविता के प्रचलित प्रतिमानों से मुक्त होना लाजिमी है, तभी हम उनकी शिल्प तथा भावगत ताजगी को जी पाएंगे। हिंदी कविता में प्रचलित बिंब व शब्द-विधान इन कविताओं में निस्संदेह नहीं है, लेकिन उनमें ताजगी है, स्निग्धता है, तरलता है—एक विदेशी लेकिन आत्मीय दृष्टि की। उनके भारतीय अनुभव, उनकी भाषा—शिशु-आंखों तथा शिशु शब्दों के अनुभव लगते हैं—इस अर्थ में नहीं कि अपरिपक्व हैं बल्कि इस अर्थ में कि वे अनुभूतिजन्य, निर्दोष हैं तथा वयस्क पूर्वाग्रहों से जूठे नहीं हुए हैं। स्मेकल की कविताओं के मूल्यांकन के लिए यह पृष्ठभूमि जरूरी है।

स्मेकल की भाषायी परिधि बड़ी व्यापक है। कहीं तो उदात्त मंत्रों की भाषा—

उत्तेजक धूप/पुष्पोल्लास/तथा/सत्त्व तथा गीति/मिटा देते/
कुंठा के रूप/दाय उदास/तथा/तम और भीति (त्रिपुटी)
वहीं दूसरी और मुहावरेदार भाषा—

सुनी कहावत/जैसी तेरी तुमड़ी/वैसा तेरा गीत

(बोला पट से कवि)

स्मेकल में आशावादिता का स्वर प्रबल तथा मोहक है—

ओ सगुनिये !/मनुज को/नहीं चाहिए/विनोद-विलास-हास
अंबर-सी नीली/मनुज को चाहिए/आस

(प्रातः स्मरण)

भारत स्मेकल की धमनियों में जैसे रच-बस गया है। एक आत्मीय विदेशी दृष्टि की ताजगी के परिप्रेक्ष्य में ये पंक्तियाँ और भी अर्थवान हो जाती हैं—

यहां/मां गंगा के तट पर/मानव का दिन/कभी नहीं ढलता/
ढलती केवल भोर

हों एकाकार/हम सबके संकुल चिर-स्वप्न/ और मां पवित्र
मां/ओ गंगा की धार। (गंगा के तट पर)

स्मेकल की आत्मीय विदेशी ताजगी हिन्दी साहित्य के लिए एक नया आयाम है, अपने अनुभवों का साझा करने के लिए, उन्हें समृद्ध करने के लिए हम उनका स्वागत करते हैं।

—राजेन्द्र भट्ट

एच-311, श्री निवासपुरी, नई दिल्ली-65

मां और अश्वत्थामा

मां और अश्वत्थामा (उपन्यास); लेखक : रवीन्द्र वर्मा;
प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 8, नेताजी सुभाष
मार्ग, नई दिल्ली-110002; पृष्ठ संख्या-154; मूल्य 25 रुपये।

पंद्रह अगस्त 1947 को स्वतंत्र भारत का एक खूबसूरत सपना साकार हुआ। अंग्रेजों की दो सौ वर्ष की गुलामी से देश मुक्त हो गया। लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी ताकि आने वाली पीढ़ी गर्व से अपना सिर उठा कर चल सके। पराधीनता के जीवन से अपने आप को मुक्त कर इंसान समझ सके।

स्वतन्त्रता मिलने से पूर्व जिस उद्देश्य और भावना को लेकर वे चले थे कि अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल कर भारतवासियों को पूर्ण स्वराज्य दिलाना है, वह उद्देश्य, स्वतन्त्रता मिलने से लेकर अब तक धीरे-धीरे लुप्त हो गया। धन और सत्ता के लोभ में स्वार्थी लोग जिस प्रकार देश की जड़ें खोखली कर रहे हैं और निज स्वार्थ की सुख-सुविधाओं को जुटाने की खातिर नीचे गिर रहे हैं उससे कहीं भी यह प्रकट नहीं होता कि उनमें देश-भक्ति की भावना लेशमात्र भी जीवित है।

श्री रविन्द्र वर्मा कृत 'मां और अश्वत्थामा' उपन्यास, स्वतन्त्र भारत में युवावर्ग के निरंतर पतन की ओर अग्रसर होने की स्थिति का यथार्थ चित्रण है। इस उपन्यास में मध्यम-वर्गीय इंसान की स्वतन्त्र भारत में जो दयनीय स्थिति है उसका चित्रण रमेश लाल नामक पात्र के माध्यम से सफलता पूर्वक किया गया है। 'महाभारत' के मिथकीय चरित्र अश्वत्थामा से रमेशलाल की तुलना एक सर्वथा अनूठा प्रयोग है।

रमेश लाल बचपन से ही एक ऐसे वातावरण में पला है जहां स्वाधीनता को ही महत्व दिया गया। परन्तु परिस्थितियों-बश उसे बड़ा होने पर एक विदेशी कम्पनी में नौकरी करनी

पड़ती है। वहां सभी सुख-सुविधाओं के होने पर भी गुलामों वाली जिन्दगी को उसका अन्तर्मन स्वीकार नहीं करता है। उसे अपने और अपने घर की परिस्थितियों के बीच भी सामंजस्य बैठाना असंभव प्रतीत होता है। इसी प्रकार की एक प्रतिक्रिया उपन्यास के इस अंश से परिलक्षित है।

रमेशलाल के पिता हरकिशनलाल अपनी युवावस्था में स्वतन्त्रता सेनानी रह चुके थे और देश को स्वतन्त्र कराने के सिलसिले में जेल भी गए। अपनी वृद्धावस्था में उन्हें सनक में कई बार यह कहते हुए सुना गया कि “कहाँ जाना था, कहाँ आ गया”। यह इसी वास्तविकता का प्रतीक है कि स्वतन्त्र भारत में इंसान-इंसान नहीं रह पाया। उपन्यास व्यंग्यात्मक भाषा के प्रयोग से, उद्देश्य की कसौटी पर खरा उतरा है। कथानक का प्रस्तुतिकरण उच्चस्तरीय है। पुस्तक की छपाई और आवरण सुन्दर है।

—सुरेश सक्सेना

दादी दाखां का फाग

दादी दाखां का फाग-(कहानी संग्रह); लेखक-राजेन्द्र स्वर्ण वत्स; प्रकाशक-जे. एस. प्रकाशन, 2182/22-सी, चण्डीगढ़-160022; पृष्ठ संख्या-114; मूल्य 20 रुपये;

‘दादी दाखां का फाग’ श्री राजेन्द्र वत्स का दूसरा कहानी संग्रह है। प्रस्तुत कहानी-संग्रह की सभी कहानियाँ हरियाणवी पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। पुरानी पीढ़ी के अनुभव की गहराइयाँ समेटे हुए ये कहानियाँ नई पीढ़ी में उत्पन्न वर्तमान युग की विषमताओं का समाधान करती हैं।

वत्स जी ने इन कहानियों के माध्यम से ग्राम्य जीवन के सुखद और उन्मुक्त वातावरण की याद ताजा कर दी है। कहानियों के सभी पात्र ग्रामीण अंचल में जन्में, पले, बड़े तथा बूढ़े हुए हैं और ये पात्र एक भरपूर जीवन जी लेने का संतोष व्यक्त करते से प्रतीत होते हैं। ‘दादी दाखां’, ‘ताऊ मास्टर जी’, ‘सरती’, ‘फाकहों’, ‘भन्तो’, ‘मेहरन’, ‘भानी’, ‘छन्नों ताई’ इत्यादि पात्रों के द्वारा ग्रामीण जीवन की विडम्बनाओं और हर्षोल्लास का चित्रण वत्स जी ने बड़े सजीव ढंग से किया है।

‘दादी दाखां’ जो वृद्धावस्था के कारण शारीरिक रूप से आज फाग में सम्मिलित नहीं हो पा रही, अपने ही मनोबल के कारण कुछ ही देर में अपने अतीत को देखकर एक पूर्ण जीवन जीने की तृप्ति प्राप्त करती है। ‘ताऊ मास्टर जी’ स्वयं सादगी का उदाहरण होते हुए भी अपने शिष्यों को सफलता की ऊँचाइयों पर देखना चाहते हैं। इंसान अपने पूरे जीवन में चाहे किसी भी प्रकार की विषमताओं में रहा हो परन्तु उसे जीवन

दीवारों के कान

दीवारों के कान; (व्यंग्य-निबंध-संग्रह); लेखक : राजेन्द्र निशेश; प्रकाशक : जे. एस. प्रकाशन : 2182 / 22-सी, चण्डीगढ़-160002; पृष्ठ संख्या : 72; मूल्य : 15 रुपये।

वर्तमान जीवन की जटिल स्थितियाँ व्यंग्य के द्वारा अधिक सफलता पूर्वक व्यक्त की जा सकती हैं। राजेन्द्र निशेश ने अपने प्रस्तुत व्यंग्य-निबंध-संकलन द्वारा जीवन की दिन-प्रति-दिन बढ़ती जटिलताओं को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। कुल मिला कर 15 निबंधों को छोटी-सी पुस्तक का आकार दिया गया है। उनके व्यंग्य आकार में छोटे किन्तु व्यंजना में अत्यंत तीखे बन पड़े हैं। प्रायः सभी निबंधों में वर्तमान व्यवस्था पर चोट करने का प्रयास किया गया है। व्यंग्य-शैली को देख कर लगता है कि राजेन्द्र निशेश में महान व्यंग्यकार की संभावनाएं निहित हैं।

‘यक्ष की वापसी’, ‘शादी दुलहे लाल की’, ‘किस्सा नटवर लाल का’, ‘अब भैसे भूख हड़ताल करें!’ आदि लेखों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार करने का प्रयास है। कुछ रचनाएँ ऐसी भी हैं जो पूरी तरह व्यंग्य नहीं बन पायी हैं और हास्य तक ही सीमित हैं फिर भी संग्रह की सफलता असंदिग्ध है। ‘दर्पण का दर्पण’ लेख में व्यंग्यकार ने स्वयं को भी नहीं बक्शा है, यही इस संकलन की सफलता है।

राजीव लूथरा

117, भाई परमानन्द कालोनी,
किंगजवे कैप, दिल्ली-110007

की सरसता को अंतिम क्षणों तक बनाए रखना चाहिए। इसका स्पष्ट उदाहरण है—रामप्यारी। अपने सम्पूर्ण जीवन के अनुभव की सम्पदा को दादी सरती कुछ ही देर की संगति में जैसे बांट देती है वह ढूँढ़ने पर भी अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

कहानियों की भाषा-शैली सरस और प्रस्तुतिकरण प्रभावशाली है। स्थान-स्थान पर ग्रामीण मुहावरों और लोकोक्तियों का स्वाभाविक ढंग से अच्छा प्रयोग किया है। भाषा की सरलता कहानियों को आडम्बरहीन सरसता प्रदान करती है। कहानियों में स्वाभाविकता और जीवन्तता अन्त तक विद्यमान रहती है।

—सुरेश सक्सेना

बी-38, गुलमोहर पार्क, नई दिल्ली-110049

दो बाल काव्य-संकलन

1. मिठाइयों की लड़ाई; कवि : सुखचैन सिंह भंडारी;
प्रकाशक : राज पब्लिशिंग हाऊस, पुराना सीलमपुर पूर्व,
दिल्ली-31; मूल्य : 10 रुपये;
2. अध्यापक दोषी है; कवि : आचार्य महावीर सिंह 'राठी';
प्रकाशक : राज पब्लिशिंग हाऊस; मूल्य : 6 रुपये; पृष्ठ
संख्या : 28

बालकों के मन को कविता द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता है। कविता या गीत द्वारा ही उन्हें 'कान्ता समस्त उपदेश' प्रदान किया जा सकता है। यूँ बालगीत लिखना बड़ा दुष्कर कार्य है क्योंकि बालकवि के सामने अद्यतन अनुभव नहीं होते, उसे इसकी रचना के लिये अपने अतीत में उतरना होता है, बचपन को फिर से जीना होता है तब कहीं जाकर बालगीत की रचना हो पाती है। सुखचैन सिंह भंडारी के प्रस्तुत गीत-संकलन में प्रायः सभी गीत बाल-मनोविज्ञान के अनुरूप हैं। कवि ने बालकों के मानसिक स्तर के अनुरूप भाषा, लय, तुक आदि का भरपूर निर्वाह किया है। उनके गीत एक

और बच्चों को स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर उनमें राष्ट्रीय भावना, धार्मिक सहिष्णुता, अपनत्व, आदि गुणों का समावेश करने में सफल रहे हैं।

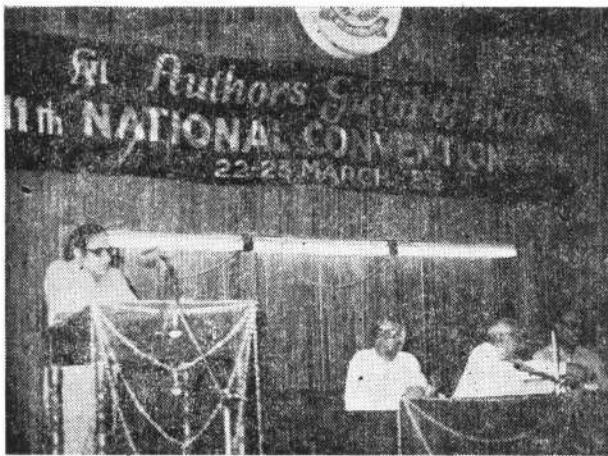
कुल 28 पृष्ठों की कृति 'अध्यापक दोषी है' में आचार्य महावीर सिंह 'राठी' ने 34 बाल-कविताओं को स्थान दिया है। कुछ छोटी कविताओं, जिन्हें 'क्षणिका' कहना अधिक उपयुक्त होगा, के द्वारा कवि ने सामाजिक आडम्बरों पर प्रहार किया है। तीन-चार कविताओं को छोड़कर सभी कविताएं मध्य आकार की हैं। 'तब और अब' कविता में कवि ने वर्तमान और अतीत में व्यंग्यात्मक समानता प्रस्तुत कर बालकों को सुव्यवहार की ओर प्रेरित करने में सफलता प्राप्त की है। संकलन में हास्य प्रदान करने वाली रचनाओं की संख्या भी पर्याप्त है। प्रायः सभी रचनाएं बालकों की अन्तर्निहित क्षमताओं, संभावनाओं को जागृत करने में सफल रही हैं।

राज पब्लिशिंग हाऊस द्वारा प्रकाशित दोनों पुस्तकों का मूल्य उचित, साज-सज्जा बेहद आकर्षक तथा कविताओं/गीतों के साथ बने चित्र प्रभावशाली हैं।

रामकुमार शर्मा

आर. जंड. 13 एच. धर्मपुरा कालोनी, नजफगढ़,
नई दिल्ली-110043

आथर्स गिल्ड आफ इंडिया का राष्ट्रीय अधिवेशन



पिछले दिनों लखनऊ के 'सहकारिता भवन' में लेखकों के अधिकारों के प्रति सजग संस्था 'आथर्स गिल्ड आफ इंडिया' का दो दिवसीय ग्याहरवां राष्ट्रीय अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अधिवेशन का उद्घाटन उत्तर प्रदेश के खाद्य एवं आपूर्ति मंत्री प्रो. वासुदेव सिंह ने किया।

इस अवसर पर डा. कपिला वात्स्यायन ने अपने विद्वतापूर्ण भाषण में आज के लेखक की विपन्न स्थिति का परिचय कराते हुए उसे सुरक्षा प्रदान करने की बात की। संस्था के अध्यक्ष श्री डी.आर. मनकेकर ने इसे लेखकों के हितों के लिये संघर्ष करने वाली एक ट्रेड यूनियन कहा। संस्था के सचिव श्री

राजेन्द्र अवस्थी ने आथर्स गिल्ड को एक ऐसा वृहद मंच बताया जिस पर देश के बहुभाषी लेखक एक साथ एकत्रित होकर अपनी बात कह सकते हैं।

अपने अध्यक्षीय भाषण में देश के प्रसिद्ध हिन्दी उपन्यासकार श्री अमृतलाल नागर ने राष्ट्रीय भावना जागृत करने के लिये समस्त बहुभाषी लेखकों का आवाहन किया। अन्त में अधिवेशन के संयोजक श्री डी. पी. सिन्हा (निदेशक संस्कृति विभाग उ.प्र.) ने समस्त आमंत्रित श्रोताओं, वक्ताओं एवं अतिथियों का धन्यवाद किया।

पहले दिन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पर एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के उपाध्यक्ष डा. शिवमंगल सिंह सुमन ने की। अन्य प्रमुख वक्ता थे डा. परिपूर्णानन्द तथा श्री मदन लाल।

दूसरे दिन दक्षिण के प्रसिद्ध 'राजराजा चोलन' पर एक गोष्ठी हुई। इस गोष्ठी की अध्यक्षता श्री एन. पार्थसारथी ने की। अन्य प्रमुख वक्ताओं में तमिल अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान के प्रमुख प्रो. के. डी. तिरुनवुकरसु ने भी राजराजा चोलन की बहुमुखी प्रतिभा पर प्रकाश डाला। मध्यान्तर के बाद हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी ने दक्षिणी भाषाओं के साहित्य के हिन्दी अनुवाद की प्रादेशिक योजना का विस्तार से विवेचन किया। इस अवसर पर बहुभाषा कवि सम्मेलन का भी आयोजन किया गया जिसमें हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, कन्नड़, तमिल तथा मलयालम आदि भाषाओं में काव्य-पाठ किया गया।

लक्ष्मीशंकर शुक्ल

द्वारा—श्री मनोहर भण्डार, अमीनाबाद रोड, लखनऊ



बुद्धिजीवियों को सम्बोधित समीक्षा-गोष्ठी

राजधानी की साहित्यिक संस्था 'विमर्श' के तत्वावधान में 5 अप्रैल को श्री अनिल राकेशी की कविता पुस्तक 'बोधिसत्व मुनें' पर एक परिचर्चा गोष्ठी आयोजित की गई। अध्यक्ष थे, सुप्रसिद्ध कवि श्री गिरिजा कुमार माथुर।

परिचर्चा के प्रारम्भ में डा. रमेश चन्द्र मिश्र की सद्यः प्रकाशित कृति 'मरजीवा' का विमोचन श्री गिरिजा कुमार माथुर के हाथों सम्पन्न हुआ। गोष्ठी का प्रारम्भ अनिल राकेशी के कविता पाठ से हुआ। उन्होंने समीक्ष्य कविता-संग्रह से श्रोताओं के आग्रह पर वे कविताएँ पढ़ीं जो श्री गोविंद निहलानी की बहुचर्चित फिल्म 'पाटी' में फिल्मायी गयी हैं। डा. प्रताप सहगल, डा. रणजीत साहा तथा डा. रमेश चंद्र मिश्र ने अपने आलेख पढ़े।

श्री प्रताप सहगल को राकेशी के संग्रह की कविताओं का मुख्य स्वर विक्षोभ, क्षुब्धता और विरोध का ही लगा, किन्तु उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि यह विरोध और विक्षोभ अपनी सफल अभिव्यक्ति के बावजूद मानस को उद्बलित क्यों नहीं कर पाता? कहीं ऐसा तो नहीं कि क्षुब्धता, विरोध और गुस्से के स्वरों को कवि ने अपने व्यक्तित्व का हिस्सा न बनाकर सिर्फ फैशन के रूप में इस्तेमाल किया हो।

डा. गंगा प्रसाद विमल ने कवि का परिचय देते हुए बताया कि अनिल की यह छटपटाहट उनके अन्तरमन से उपजी है। इन कविताओं को उन्होंने जिया है ओढ़ा नहीं है। इसलिए यदि हम ऐसा सोचते हैं कि यह विक्षोभ और विरोध सार्वजनिक है, या यह दूर से देखने वाले की अभिव्यक्ति मात्र है तो ठीक नहीं। डा. नरेन्द्र मोहन, डा. सुलेख चंद्र शर्मा और श्री जगदीश चंद्र 'जीत' ने अनुभव किया कि पढ़े गये आलेखों का मुख्य स्वर आक्रामक सा रहा।

अध्यक्ष श्री गिरिजा कुमार माथुर ने समीक्ष्य संग्रह की

कविताओं की सराहना करते हुए दो बातों की ओर कवि का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। एक तो यह कि पर्वतीय अंचल की जो अपनी एक विशेष गंध होती है, उसका अभाव-सा इन रचनाओं में है, जबकि अपनी एक अलग पहचान बनाने के लिये वह आवश्यक है और दूसरी बात है कि कवि के पास 'व्याघ्र दृष्टि' होनी चाहिये जो अनपेक्षित को निर्ममता से काट कर अलग कर दे। इससे कविता सशक्त और प्राणवान बनती है और श्री राकेशी के पास वह शक्ति है। उनके पास मिथ है, विम्ब संजोने की क्षमता है, अभिव्यक्ति का पैनापन है।

—कुसुम श्रीवास्तव

ए-1/339, जनकपुरी, नई दिल्ली-110058

प्राण-प्रतिष्ठा की घड़ी

डॉ. कमल पुंजाणी

क्यों बनाते हो

शैल-शिखरों पर

संगमरमरी शब्दों के मन्दिर ?

मूर्तियां/अपूजित

निस्तेज पड़ी हैं।

उठा लो उन्हें नीचे उतारो :

मूक वसुधा

प्रतीक्षारत खड़ी है।

अर्थ का आह्वान करो—

बीत रही

प्राण-प्रतिष्ठा की घड़ी है।

I-11/2, आर. टी. जाडेजा एस्टेट

गुरुद्वारा के निकट

जामनगर-361001 (गुजरात)



भारतीय समकालीन कविता और कवि

एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा और गुजराती साहित्य परिषद् की ओर से गत 30 एवं 31 मार्च को भारतीय समकालीन कविता और कवि विषय पर अहमदाबाद में एक अखिल भारतीय संगोष्ठी आयोजित की गई।

इसमें विभिन्न भारतीय भाषाओं के कवियों ने भाग लिया। हिन्दी का प्रतिनिधित्व दिविक रमेश ने किया। इसके अतिरिक्त सितांशु यशचन्द्र (गुजराती) केशव मलिक (अंग्रेजी) अयप्पा (मलयालम) आदि कवियों ने भाग लिया। सभी कवियों ने अपनी-अपनी कविताओं के पाठ के साथ अपनी भाषा की समकालीन कविता का परिदृश्य भी प्रस्तुत किया। संगोष्ठी के सभी सत्रों की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध भारतीय लेखक उमाशंकर जोशी ने की। □

—प्रवीण शर्मा

डी-144, सेक्टर-20, नौएडा, उत्तर प्रदेश

जाकिर साहब की कहानी उनकी बेटी की जबानी

नयी दिल्ली : केन्द्रीय शिक्षा मंत्री श्री कृष्णचंद पंत ने गत 4 मई को राजधानी के हिमाचल भवन में आयोजित एक समारोह में सईदा खुशीद आलमखां द्वारा लिखित पुस्तक—‘जाकिर साहब की कहानी उनकी बेटी की जबानी’ का विमोचन किया।

इस अवसर पर डा. जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व और कृतित्व की चर्चा करते हुए श्री पंत ने कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में जाकिर साहब का बहुत बड़ा योगदान है। उन्होंने शिक्षा को रोजगार के साथ जोड़ने का काम किया।

शिक्षा मंत्री ने कहा कि आज पढ़े-लिखे हाथ से काम करना

बुरा समझते हैं। चाहे हाथ से काम करने वाला एक कुशल कारीगर, शिक्षित व्यक्ति से ज्यादा ही क्यों न कमा रहा हो। जब तक ये सामाजिक मूल्य नहीं बदलेंगे, तब तक शिक्षा को काम के साथ जोड़ना संभव नहीं हो पायेगा। गांधी जी और जाकिर साहब ने ऐसी ही शिक्षा के लिए काम किया।

अपने से पूर्व वक्ता प्रो. विजयेन्द्र स्नातक के वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए श्री पंत ने कहा कि अध्यापक कहते हैं “डा. साहब अध्यापक थे इसलिए हमारी बिरादरी के थे। इसी प्रकार हिंदू, मुसलमान, सिख और ईसाई कहते हैं कि जाकिर साहब हमारी बिरादरी के थे। मैं कहता हूं डा. साहब पूरी मानवता के थे। शिक्षा के क्षेत्र में जो काम शुरू में वह कर गए आज उसका बहुत महत्व है।”

समारोह का आयोजन डा. जाकिर हुसैन की पुण्य तिथि के अवसर पर दिल्ली हिंदी संस्थान और मिलन प्रकाशन ने संयुक्त रूप से किया था। श्री पंत ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में दिल्ली हिंदी संस्थान द्वारा किये जा रहे कार्य के लिए बधाई देते हुए कहा कि सारे देश में हिंदी प्रचार-प्रसार तभी होगा जब अहिंदी भाषी लोग उसे मन से अपनायें। हिंदी किसी पर थोपी न जाये।

समारोह की अध्यक्षता करते हुए जामिया मिलिया इस्लामिया के कुलपति प्रो. अली अशरफ ने कहा कि जामिया मिलिया में जाकिर साहब के व्यक्तित्व का इतना गहरा असर पड़ा कि वहां के लोग उन्हें आज भी याद करते हैं। उन्होंने भारत सरकार से जामिया मिलिया को विश्वविद्यालय का पूरा दर्जा देने का अनुरोध भी किया।

जाकिर साहब की बेटी सईदा खुशीद आलमखां ने कहा, “वैसे तो जाकिर साहब पर विद्वानों ने अनेक किताबें लिखी हैं यह किताब मैंने बड़ी सीधी-सादी जवान में उन लोगों के लिए लिखी है जो ज्यादा पढ़-लिख नहीं सकते हैं। मैंने यह किताब उर्दू में लिखी थी, डा. माजदा असद ने इसका अनुवाद हिन्दी में किया है।”

इस अवसर पर हिन्दी के जाने-माने विद्वान प्रो. विजयेन्द्र स्नातक, दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादक विनोद मिश्र, डा. असद अली, मोहम्मद हारू जापान वाले और पुस्तक की अनुवादिका डा. (श्रीमती) माजदा असद ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

प्रो. विजयेन्द्र स्नातक ने जाकिर साहब को एक उच्चकोटि का नेता बताते हुए कहा कि जितनी बार उनका स्मरण आता है उतनी बार ही हमें एक नया मार्ग दिखाई देता है। अनुवाद का कार्य बड़ा कठिन कार्य है। डा. माजदा असद हिन्दी और उर्दू दोनों में साधिकार लिखती हैं। मैं चाहूंगा कि वह उर्दू के और भी अच्छे-अच्छे ग्रंथों का अनुवाद करें।

—सतीश कुमार

पी. 76, ब्रह्मपुरी, गली नं. 18, शाहदरा, दिल्ली।



साहित्य दिवस-1985

राजस्थान प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा जयपुर में 9-10 अप्रैल को 'साहित्य दिवस' का आयोजन किया गया। पाकिस्तान की प्रसिद्ध उर्दू कवयित्री श्रीमती फहमीदा रियाज समारोह की मुख्य अतिथि थी, तथा देश के प्रसिद्ध उर्दू शायर श्री गुलाम रब्बानी ताबां ने इसकी अध्यक्षता की। इस अवसर पर श्रीमती फहमीदा रियाज ने कहा कि प्रगतिशील लेखक इस बात को पक्की तरह समझ लें कि सामाजिक न्याय का संघर्ष किसान या मजदूर अथवा किसी एक वर्ग का नहीं होता, बल्कि समाज के सभी पीड़ित वर्गों का सामूहिक संघर्ष होता है।

इस अवसर पर राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ के अध्यक्ष श्री गुलाम रब्बानी ताबां ने कहा कि लेखक कभी तटस्थ नहीं होता, वह तरफदार होता है। लेखक लोकतंत्र का, समाजवाद का और धर्मनिरपेक्षता का तरफदार होता है। अतः लेखक

साहित्यकार

राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित दो-दिवसीय साहित्यकार सम्मान एवं बन्धुत्व समारोह के दौरान 24 मार्च, 1985 को चर्चा गोष्ठी आयोजित की गई। गोष्ठी का अध्यक्षता प्रो. नन्द चतुर्वेदी ने की।

इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए वरिष्ठ साहित्यकार पं. जनार्दन राय नागर ने कहा कि आज देश का फिर साहित्यकार बन्धुत्व की जरूरत है। इस क्षेत्र में बहुत पहले राजस्थान ने पहल की थी। आज फिर हिमालय से कन्याकुमारी तक एकता की भावना की आवश्यकता है। मजहब यह काम नहीं कर सकेगा। मजहब की अच्छाइयों और बुराइयों को हम देख चुके हैं। मजहब की आड़ में हिंसा किस सीमा तक बढ़ सकती है यह भी अब किसी से छुपा नहीं है।

संगोष्ठी में अकादमियों की भूमिका पर विचार प्रकट करते हुए गुजरात साहित्य संगम के महामंत्री श्री नरेन्द्र देव ने कहा कि लोक कल्याणकारी राज्य में अकादमियों की भूमिका सकारात्मक होनी चाहिए। श्री देव की मान्यता है कि भारतीय भावात्मक एकता के लिये आज देश को भाषावार अकादमियों की बजाय एकीकृत एकादमी की आवश्यकता है।

संगोष्ठी में डॉ. जयसिंह नीरज ने अपने विचार प्रकट करते हुए इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि पुराने जमाने में जब संचार संवहन के साधन इतने विकसित नहीं थे, विभिन्न प्रांतों में सांस्कृतिक एकता और आदान-प्रदान बखूबी चलते थे, मगर आज जबकि न केवल इन साधनों का पर्याप्त विकास हो चुका है बल्कि अन्यान्य कई माध्यम भी विकसित हो चुके हैं तब हम सांस्कृतिक दृष्टि से परस्पर कटते जा रहे हैं। डॉ. नीरज ने कहा कि भारत अखण्डता के केन्द्र में सांस्कृतिक एकता सदैव विद्यमान रही है। अतः वर्तमान विघटन के संदर्भ में उन कारणों की खोज की जानी चाहिए जो सांस्कृतिक अलगाव उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी हैं।

इस गोष्ठी में महाराष्ट्र के रमेश मंत्री, श्री राजेन्द्र सक्सेना, गुजरात की उर्दू कवयित्री अंजना संधीर, साहित्यकार अशोक हर्ष, मधुसूदन व्यास, ब्रजलाल दूवे एवं सुश्री गया ठाकुर ने भी विचार व्यक्त किए।

भगवती लाल व्यास

लोकमान्य तिलक, टीचर्स कालेज, डबोक (उदयपुर) 313022



अदालतनामा

पैसा बहुत कुछ है, लेकिन सब कुछ नहीं। ईमान, पारिवारिक दायित्व, पारस्परिक स्नेह जब पैसे के लिए लुटा दिये जाते हैं तो अन्त में वहां एकांगी और निरीह जीवन रह जाता है तब पैसा किसी को शरण अथवा शक्ति नहीं देकर जेल के सीखच्चों तक ले जाता है। 'अदालतनामा' नाटक में लेखक ने यही दिखाने का प्रयत्न किया है। एक धनवान परिवार को किस प्रकार अन्त में टैक्स चोरी तथा अपने मार्ग में रोड़ा बन गये व्यक्ति को रास्ते से हटाने के चक्कर में यानी हत्या के अपराध में पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

8 अप्रैल को प्यारे लाल भवन में लेखक श्री मोहन दास नैमिशराय का यह चौथा नाटक मंचित हुआ है। समाज में व्याप्त विषमता, भ्रष्टाचार तथा राजनैतिक आपा-धापी के प्रति लेखक के मन में जबर्दस्त विद्रोह है और वही विद्रोह उनका इन नाटकों में प्रकट हुआ है।

निर्देशक श्री दिनेश अहलावत ने इस नाटक में ठाकुर साहब की मुख्य भूमिका में प्रभावी अभिनय किया है। नीना राजपूत और हैप्पी का अभिनय भी अच्छा रहा। नौकर यानी रामू की भूमिका में रोशन लाल तथा पंडित जी की भूमिका में दर्शन सचदेव लोगों का समय-समय पर अच्छा मनोरंजन करते रहे। कुल मिलाकर नाटक प्रशंसनीय है। लेखक और कलाकार अपनी कला साधना के लिये बधाई के पात्र हैं। □

हर्षचन्द्र

संपादक, 'कथालोक', 119 बैंक कालोनी, दिल्ली।



'इन्टरव्यू' का मंचन

'क्लासिक इन्टरनेशनल कल्चरल सोसायटी' द्वारा गत मार्च में लखनऊ के मिनी रवीन्द्रालय में 'इन्टरव्यू' नामक एकांकी का मंचन किया गया।

प्रस्तुत एकांकी वर्तमान समय में नियुक्तियों के लिए आयोजित इन्टरव्यू की पद्धति पर एक व्यंग्य है। इस एकांकी के मुख्य पात्र सर्वश्री एन. के. सिन्हा, मोहम्मद रेहान, मोहम्मद सलीम, नवीन सार, एस.सी. जोशी, अबरार अहमद, शाह जमाल अत्ता, संजय यादव, अशोक आलम और कु. इफ्त आरा हैदरी थे। साक्षात्कार के लिए उपस्थित अभ्यर्थियों के चरित्रों

की विविधता एवं हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण संवाद एकांकी के विशेष आकर्षण रहे। एकांकी के लेखक श्री नरेन्द्र कुमार सिन्हा की यह प्रथम कृति पूर्ण और सफल रही। बेरोजगार कवि और उम्मीदवार के रूप में एन. के. सिन्हा का अभिनय भी सराहनीय रहा। श्री अशोक आलम के सफल निर्देशन में संस्था की यह प्रथम प्रस्तुति सराहनीय रही।

—डॉ. उषा चौधरी

बी/603 लालबाग काम्पलेक्स, लखनऊ-1



कंकणा बनर्जी



पं. जसराज

की भांति इस वर्ष भी गत 9 से 12 वसीय संगीत समारोह का आयोजन गया। समारोह का विशेष महत्व आये प्रख्यात संगीत कलाकारों द्वारा गाओं से संकट मोचन हनुमान जी को हरना था।

माता प्रसाद एवं रविशंकर के युगल : इन्द्रदेव द्वारे ने स्वतन्त्र तबला वादन मण्डे (पखावज) एवं विवेक देशमुख तबले की युगलबन्दी हुई। काशी लित एवं संगीत नाट्य संकाय के पं. चित्रवीणा पर राग-दरबारी प्रस्तुत

जन, एवं चैती के सरताज पं. महादेव : भजन, ठुमरी एवं चैती प्रस्तुत किया। पं. पशुपति नाथ मिश्र ने गायन में विशेष आकर्षण - फिल्म अभिनेत्री एवं थी। जिन्होंने पाँच भजनों को गाकर दिया।

पं. जसराज के लोकप्रिय शिष्य नाम रही, आपने पहले राग चन्द्राल प्रस्तुत किया।

गाकारों में पं. त्रिभुवन उपाध्याय ने शिवनाथ मिश्र ने सितार पर राग की। शास्त्रीय संगीत की सिद्धहस्त में राग विहाग, ठुमरी एवं चैती

(गीत) "भूलनी में लागी नजरिया हो, रामा अब नाहि पहनु काफी सराहनीय था।

तीसरी शाम कलकत्ते से आयी किराना घराने व सुविख्यात गायिका श्रीमती मणिक वर्मा के गायन से यादगार शाम बनी।

इस शाम की दूसरी उपलब्धि थी डा. मुनन्दा पटनायक जिन्होंने राग विष्णु विहाग में विलम्बित बड़ा ख्याल गाया इसी राग का द्रुतलय "जित समझाऊ मन समझत नाही" का आकर्षक था और अन्त में उन्होंने दो भजन "रघुकुल रीति सच चलि आई" और "तोरी महिमा अपरम्पार" गाकर अपने गाय का समापन किया।

समापन के दिन दिल्ली के श्री राम मोहन मिश्र ने कथ नृत्य में गुरु वन्दना, ठाट, उठात, टुकड़े की तिहाई एवं पर तथा बाद में आकर्षक कथक नृत्य प्रस्तुत किया। बाल कलकार पं. विभूति नारायण मिश्र का स्वतन्त्र पखावज वाद हुआ। तत्पश्चात बम्बई की बहुचर्चित गायिका सुश्री कंकणा बनर्जी ने अपने गायन द्वारा राग बागेश्वरी में बड़ा एवं छोटा ख्याल प्रस्तुत किया। हंसध्वनि में "पवन पूत हनुमान ललातुम तथा अन्त में मीरा का भजन "पायो जी मैंने राम रतन धन पाये गाया। इसके बाद कलकत्ता से आये सितार में ख्याति प्राप्त सितारवादक श्री मणि लाल बाग ने सितार पर राग दरबा कान्हड़ा में अलाप, जोड़ भाला से संगीत लहरों का संचालन कर संगीत श्रोताओं का मन जीत लिया। इस चार दिवसीय समारोह का समापन पं. जसराज के गायन से हुआ। □



प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी 13 मई, 1985 को नयी दिल्ली में जनसंख्या विकास पर भारतीय सांसदों के सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए ।

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा 7 मई को आयोजित एक समारोह में प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी ने वाराणसी के पं. रघुनाथ शर्मा को एक लाख रुपये का विश्व संस्कृत भारती पुरस्कार देकर सम्मानित किया ।

